दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-१५

बौद्ध तन्त्र कोश

(भाग-२)



भोट विद्या संस्थानम्

सम्पादक

ठिन्लेराम शाशनी

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

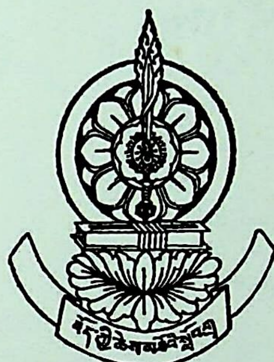
बुद्धाब्द २५४१ ख्रीस्ताब्द १९९७

परम श्रद्धेय गुरुवर
प्रो० ब्रजवल्लभ द्विवेदी
जी को सादर भेंट।
छिन्लेराम शास्त्री
२७.९.९७

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-१५

बौद्ध तन्त्र कोश

(भाग-२)



सम्पादक

ठिनलेराम शाशनी

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

खीस्ताब्द १९९७

बुद्धाब्द २५४१

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला- १५

प्रधान सम्पादक- प्रो० एस० रिन्पोछे

प्रथम संस्करण- ५५० प्रतियाँ, १९९७

मूल्य : सजिल्द- रु० १००.००
अजिल्द- रु० ८५.००

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७

मुद्रक : सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, पाण्डेयपुर, वाराणसी ।

RARE BUDDHIST TEXTS SERIES-15

BAUDDHA TANTRA KOŚA

(PART-II)



Edited
by
Thinlay Ram Shashni

RARE BUDDHIST TEXTS RESEARCH PROJECT
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

B.E. 2541 C.E. 1997

RARE BUDDHIST TEXTS SERIES-15

Chief Editor : *Prof. S. Rinpoche*

First Edition: 550 Copies, 1997

Price: Hardback: Rs. 100.00
Paperback: Rs. 85.00

Publisher:

Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi-221 007

Printed at Sattanam Printing Press, Pandeypur, Varanasi.

प्रकाशकीय वक्तव्य

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना से प्रकाशित शोधपत्रिका 'धी:' में प्रारम्भ से ही ''बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय'' शीर्षक से बौद्धतन्त्र ग्रन्थों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का उन्हीं ग्रन्थों में दी हुई परिभाषाओं और उनके विविध अर्थों का संकलन किया जाता रहा है । यहाँ यह स्मरणीय है कि तान्त्रिक पारिभाषिक शब्दों का अर्थ अन्य शब्दों की तरह केवल प्रकृति-प्रत्यय की स्थिति पर निर्भर नहीं रहता, उसका सीधा सम्बन्ध सिद्धों की साधना से भी होता है । जिस सिद्ध ने साधना की जिस स्थिति में जिस शब्द के अर्थ को उपलब्ध कर लिया वह उस अर्थ का वहीं तक प्रयोग करता है । इसलिये इन पारिभाषिक शब्दों की परिभाषाओं और अर्थों में भिन्नता भी आ जाती है, जो भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में परिलक्षित होती है ।

इन पारिभाषिक शब्दों का एक संग्रह ''बौद्ध तन्त्र कोश'' (प्रथम भाग) नाम से दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना से १९९० में प्रकाशित किया गया था, जिसमें 'धी:' के १ से ८ अंक तक में प्रकाशित शब्दों का संग्रह था । इसे पाठकों ने बहुत पसन्द किया । इसी से उत्साहित होकर हम 'धी:' के ९ अंक से आगे प्रकाशित शब्दों का संग्रह बौद्ध तन्त्र कोश के दूसरे भाग के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं । हमें आशा है तन्त्रशास्त्र के अध्येताओं एवं जिज्ञासुओं के लिये यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा और तन्त्र में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ को समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिलेगी ।

अन्त में ग्रन्थोक्त एवं प्रसङ्गवश आये हुए विशिष्ट शब्दों की विस्तृत सूची भी दी गई है, जो शोधकर्ताओं के लिये विशेष ज्ञानवर्धक होगी ।

इस कोश की सामग्री एकत्रित करने, उसका सम्पादन कर ग्रन्थ का रूप देने के लिये हम योजना के सभी विद्वानों को धन्यवाद देते हैं । विशेष रूप से श्री ठिनलेराम शाशनी की भूरिश: प्रशंसा करते हैं जिन्होंने अत्यन्त निष्ठा और श्रम के साथ इसे संवारा है।

इस ग्रन्थ में प्रयुक्त शब्दों और परिभाषाओं का जिन ग्रन्थों से संकलन किया गया है उनकी सूची इस प्रकार है—

(१) अभिसमयमञ्जरी- दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-११
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९३.

(२) आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति-अमृतकणिकाटिप्पणी तथा अमृतकणिकोद्योत-निबन्धसहित- भोट-भारतीयग्रन्थमाला-३०,
सम्पादक- डॉ० बनारसी लाल, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९२.

(३) कालचक्रतन्त्र-विमलप्रभाटीका (द्वितीय भाग)- दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-१२, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९४.

(४) कालचक्रतन्त्र-विमलप्रभाटीका (तृतीय भाग)- दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-१३, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९४.

(५) कृष्णयमारितन्त्र एवं रत्नावली पञ्जिका- दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-९
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९२.

(६) खसमतन्त्रटीका- संकाय पत्रिका-१, श्रमणविद्या भाग-१,
सम्पादक- प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८३.

(७) गुह्यसमाजतन्त्र- बौद्ध-भारती ग्रन्थमाला-१७,
सम्पादक— स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, १९८४.

(८) डाकिनीजालसंवररहस्य- दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-८,
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९०.

(९) महामायातन्त्र (गुणवती टीका सहित)- दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-१०, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९२.

उपर्युक्त ग्रन्थों के सम्पादकों एवं प्रकाशकों के प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं ।

सारनाथ
६ जुलाई, १९९७

स० रिन्पोछे
निदेशक

PUBLISHER'S NOTE

In 1990 our project published a collection of Buddhist technical words under the title *Bauddha Tantra Kośa* (Part : I) which included technical words in the tantras, listed in the eight issues of our Research Journal. We are now publishing the second part of the book eliciting such technical terms as have been selected from the glossarial content of further connotive texts.

We hope that the terms presented here will find acceptance among readers owing to their particularity of meaning in usage according to the esoteric practice.

A glossary given at the end is not only of lexical but also of metaphysical value. Similarly, the task has been made easy by acquisition of data for sources of the technical words, viz.

(i) *Abhisamayamañjarī* - Durlabha Bauddha Granthmala(11). published by RBTRP. Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, 1993.

(ii) *Āryamañjuśrīnāmasaṅgīti-Amṛtakaṇikāṭippaṇī* and *Amṛtakaṇikodyotanibandha* - Bhoṭa-Bharati Granthamala (30) ed. Dr Banarsi Lal, Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, 1994.

(iii) *Kālacakratantra Vimalaprabhāṭīkā* (Part : II)- Durlabha Bauddha Granthamala (12). RBTRP. Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, 1994.

(iv) *Kālacakratantra Vimalaprabhāṭīkā* (Part : III)- Durlabha Bauddha Granthamala (13). RBTRP. Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, 1994.

(v) *Kṛṣṇayamāritantra* with *Ratnāvalī-pañjikā* - Durlabha Bauddha Granthamala (9). RBTRP. Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, 1992 .

(vi) *Khasamatantraṭīkā* - Saṁkāya Patrikā.-1, Śramaṇavidyā (Vol. : I) ed. Prof. J. Upadhyaya. Sampurnananda Sanskrit University, Varanasi, 1993.

(vii) *Guhyasamājatantra* - Bauddha-Bharati Granthamala (17) ed. Svami Dvarika Das Shastri. Bauddha Bharati Prakashan, 1984.

(viii) *Ḍākinījālasaṁvararahasya*- Durlabha Bauddha Granthamala (8). RBTRP. Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, 1990.

(ix) *Mahāmāyātantra* with *Guṇavatī-ṭīkā* - Durlabha Bauddha Granthamala (10). RBTRP. Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi,1992.

We are deeply indebted to the editors as well as publishers of the above works .

We are thankful to Sh. Thinlay Ram Shashni and his colleagues working on the Project to bring out the two consecutive tracts of *Bauddha Tantra Kośa.* It is the result of collaborative effort for which credit must go to the entire research unit.

Sarnath
6th July, 1997

S. Rinpoche
Director

པར་སྐྲུན་པའི་ཆེད་བརྗོད།

༄ ནང་པའི་ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་འཆར་གཞིའི་སྡེ་ཚན་གྱིས་རྙིཿདུས་དེབ་ཀྱི་པར་སྐྲུན་འགོ་ཚུགས་པ་ནས་བཟུང་ནང་པའི་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དགོངས་པ་ཞིས་པའི་འགོ་བརྗོད་འོག་ནང་པའི་སྔགས་གཞུང་རྣམས་སུ་བེད་སྤྱོད་གནང་བའི་ཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་རྣམས་གཞུང་དེ་དང་དེར་གསལ་བའི་མཚན་ཉིད་དང་གོ་དོན་སྣ་ཚོགས་པར་འགྲེལ་བརྗོད་གནང་བ་རྣམས་ཕྱོགས་བསྡུ་བྱས་ཡོད། འདིར་ཐུགས་སྣང་མཛད་དགོས་པ་ཞིག་ལ་སྔགས་ཀྱི་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཚིག་རྣམས་ཀྱི་གོ་བ་ལེན་ཚུལ་སྤྱིར་ཆོས་ཚིག་གཞན་དང་མི་འདྲ་བར་རང་བཞིན་དང་རྒྱན་ལ་སོགས་པར་མ་ལྟོས་པར་གྲུབ་ཐོབ་རང་ཉིད་ཀྱི་ཉམས་སྣང་དང་ཐད་ཀར་འབྲེལ་བ་ཡོད་པ་ཞིག་ཡིན། གྲུབ་ཐོབ་གང་ཞིག་གིས་སྒྲུབ་པའི་གནས་སྐབས་གང་ཞིག་ཏུ་ཚིག་གང་ཞིག་གི་དོན་ལ་དམིགས་པ་དེ་ཉིད་དོན་དེ་སྟེང་ཙམ་དུ་སྦྱོར་བར་མཛད་ཡོད། དེས་ན་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཆོས་ཚིག་འདི་དག་གི་དགོངས་པ་དང་དོན་ཐ་དད་དུ་འགྱུར་བ་གཞུང་གཞན་དང་གཞན་ལས་མཚོན་ནུས་པ་ཡིན།

ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཆོས་ཚིག་གི་ཕྱོགས་བསྡུ་གཅིག་ནང་པའི་སྔགས་ཀྱི་ཚིག་མཛོད་པོད་དང་པོ་ཞེས་པའི་མཚན་བྱང་ཐོག་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༠ ལོར་ནང་པའི་ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་འཆར་གཞིའི་སྡེ་ཚན་ནས་པར་སྐྲུན་ཞུས་ཟིན་པ་ཡིན། ཕྱག་དཔེ་དེའི་ནང་རྙིཿདུས་དེབ་ ༡ ནས་ ༨ བར་ཕྱོགས་བཏུས་ཞུས་པའི་ཚིག་རྣམས་ཕྱོགས་བསྡུ་བྱས་ཡོད། ཕྱག་དེབ་དེ་ལ་རྒྱ་ཆེ་སློག་པ་པོས་དགའ་ཞེན་ཆེན་པོ་གནང་བར་བརྟེན་རྙིཿདུས་དེབ་ ༩ ནས་ཕྱོགས་བཏུས་བྱས་པའི་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཆོས་ཚིག་རྣམས་ཕྱོགས་གཅིག་ཏུ་བཏུས་ཏེ་སློག་པ་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཆེད་ནང་པའི་སྔགས་ཀྱི་ཚིག་མཛོད་པོད་གཉིས་པ་འདི་པར་སྐྲུན་ཞུས་པ་ཡིན། ཕྱག་དེབ་འདི་སྔགས་གཞུང་ལ་ཐུགས་སྣང་མཛད་མཁན་རྣམས་ལ་སྔགས་གཞུང་གི་ཚིག་དོན་གྱི་གོ་དོན་ལོན་པ་ལ་ཕན་ཐོགས་ཆེན་པོ་ཡོང་བའི་རེ་བ་དང་ཡིད་ཆེས་ཡོད།

མཇུག་ཏུ་གཞུང་ནས་བྱུང་བ་དང་ཞར་ལ་འོང་བའི་ཚིག་ཁྱད་པར་བ་རྣམས་ཀྱི་ཐོ་རྒྱུས་པ་ཞིག་བཀོད་ཡོད་པ་འདིས་ཉམས་ཞིབ་པ་རྣམས་ལ་དམིགས་བསལ་ཕན་ཐོགས་ཡོང་བའི་རེ་བ་ཡོད།

ཚིག་མཛོད་འདིའི་རྒྱུ་ཆ་ཕྱོགས་བསྡུ་བྱ་རྒྱུ་དང་། ཞུ་སྒྲིག་བྱས་ཏེ་དཔེ་གཟུགས་སུ་འགྱུར་བར་མཛད་མཁན་སྔོ་ཚན་འདིའི་མཁས་དབང་རྣམ་པར་ཐུགས་རྗེ་ཆེ་ཞུ་རྒྱུ་མ་ཟད། ལྷག་པར་དུ་ཕྱག་དེབ་འདིའི་པར་སྐྲུན་ཐད་ལྷག་བསམ་གྱིས་ངལ་བ་མཛད་པོ་སྐུ་ཞབས་འཕྲིན་ལས་རཱམ་ཤཱཤནི་མཆོག་ལ་ཐུགས་བརྗོད་ཞུ་རྒྱུ་ཡིན།

དེབ་འདིའི་ནང་ཕྱོགས་བསྡུ་བྱས་པའི་ཚིག་དང་མཚན་ཉིད་རྣམས་གཞུང་གང་ལས་བཏུས་པའི་གཞུང་སོ་སོའི་མཚན་བྱང་བཀོད་པ་གཤམ་གསལ་ལྟར༔

༡ མངོན་པར་རྟོགས་པའི་སྙེ་མ།

༢ འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པ། དེའི་མདོར་བཤད་བདུད་རྩིའི་ཐིགས་པ་དང་། བདུད་རྩིའི་ཐིགས་པའི་སྒྲོན་མའི་བཤད་སྦྱར།

༣ དཔལ་དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་དང་དེའི་འགྲེལ་པ་དྲི་མེད་འོད། ལེའུ་གསུམ་པ་དང་བཞི་པ།

༤ དཔལ་དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་དང་དེའི་འགྲེལ་པ་དྲི་མེད་འོད། ལེའུ་ལྔ་པ།

༥ གཤིན་རྗེ་གཤེད་ནག་པོའི་རྒྱུད། དེའི་དཀའ་འགྲེལ་རིན་པོ་ཆེའི་འཕྲེང་བ་དང་བཅས་པ།

༦ ནམ་མཁའ་དང་མཉམ་པ་ཞེས་བྱ་བའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ།

༧ དཔལ་གསང་བ་འདུས་པའི་རྒྱུད།

༨ མཁའ་འགྲོ་མ་དྭ་བ་སྡོམ་པའི་སྙིང་པོ།

༩ དཔལ་སྒྱུ་འཕྲུལ་ཆེན་པོའི་རྒྱུད་དང་། དེའི་འགྲེལ་པ་ཡོན་ཏན་ལྡན་པ་བཅས་སོ།།

གོང་གི་གཞུང་དེ་དག་གི་ཞུ་སྒྲིག་མཁན་དང་། དེ་བཞིན་པར་སྐྲུན་མཛད་པོ་རྣམས་ལ་ཐུགས་རྗེ་ཆེ་ཞུ་དང་བཅས་ངེས་སྟོན་པ་ཟམ་གདོང་པས་ ༡༩༩༧ ཕྱི་ཟླ་ ༧ ཚེས་ ༦ ལ་བྲིས།

विषय-सूची

संकेत-सूची

अ० क०	अमृतकणिका
अ० म०	अभिसमयमञ्जरी
का० त०	कालचक्रतन्त्र
कृ० त०	कृष्णयमारितन्त्र
कृ० त० टी०	कृष्णयमारितन्त्रटीका
ख० त० टी०	खसमतन्त्रटीका
गु० स०	गुह्यसमाजतन्त्र
डा० जा० सं० र०	डाकिनीजालसंवररहस्यतन्त्र
म० त० टी०	महामायातन्त्रटीका
वि० प्र०-II	विमलप्रभा भाग-२
वि० प्र०-III	विमलप्रभा भाग-३

●

बौद्धतन्त्रकोशः

(द्वितीयो भागः)

अकनिष्ठभूमिः

त्रीणि ध्यानानि प्रत्येकं त्रिभूमिकानि, चतुर्थमष्टभूमिकम् , तस्याष्टमी भूमिरकनिष्ठम्। (म० त० टी०, पृ० ३२)

अकारः

[१]तद्यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकारसंम्भवः ।
अकारः सर्ववर्णाग्र्यो महार्थः परमाक्षरः ॥

अकारेणात्र प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी प्रज्ञापारमिता उच्यते। सा च परमाणुधर्मतातीता आदर्शप्रतिसेनातुल्या। ततः सम्भवतीति अकारसम्भवः सम्यक्सम्बुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुंसकपदं सहजकाय इत्युच्यते। स चाकारः सर्ववर्णानामग्र्योऽनाहतत्वान्निरावरणत्वेन स्कन्धधात्वायतनविषयैकलोलीभावात्। उक्तं च—

ज्वलन्तं दीपसदृशं हृदि मध्यमनाहतम् ।
अक्षरं परमं सूक्ष्मं महार्थं परमं प्रभुम् ॥
महामुद्रा स्थिता नाभौ ज्वलद्दीपशिखाकरा ।
आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तिता ॥ इति।

सकलबुद्धगुणदायकत्वान्महार्थः. अत एव परमाक्षर उत्पादनिरोधरहितः।
(अ० क०, पृ० २०)

बोधिचित्तमकारः। (अ० क०, पृ० १०८)

---

१. ना० सं० ५.१

अकुशलानि (दश)

ततो दशाकुशलपरित्यागं विभावयेत्। प्राणातिपातमदत्तादानं काममिथ्याचारं मृषावादं पारुष्यं पैशुन्यं संभिन्नप्रलापम् अभिध्यां व्यापादं कुदृष्टिंचेति।

(वि० प्र०, II.१५३)

अक्षराक्षरम्

अक्षयत्वादक्षरश्चित्तवज्रस्तस्य गुह्याक्षरम् अक्षराक्षरम्।

(म० त० टी०, पृ० २९)

अक्षराणि

इहाकारादयः स्वराः ककारादीनि व्यञ्जनानि क्षरभूतानि च प्रतीत्य-समुत्पन्नानि शास्त्रविद्धिरक्षराण्युक्तानि। तथा चाह—

"न क्षरति न चलत्यपरस्थानं गच्छतीत्यक्षरशब्देन स्वर इत्युच्यते"। तेन कुमन्त्री भ्रान्तोऽक्षरत्वेन स्वरसमूहं गृह्णाति व्यञ्जनसमूहं वा। परमार्थतः स्वरव्यञ्जनसमूहोऽक्षरो न भवति। अक्षरशब्देन परमाक्षरसुखं ज्ञानं वज्रसत्त्व इति। तथा मनस्त्राणभूत्वान्मन्त्रोऽपि परमाक्षरज्ञानमुच्यते। तथाऽपराध्यात्मिकी विद्या प्रज्ञापारमिता प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी धर्मधातुनिःस्पन्दपूर्णावस्था सहजतनुरित्युच्यते जिनैः। तौ प्रतीत्यसमुत्पन्नानामिन्द्रियाणामगोचरौ दिव्येन्द्रियगोचरौ वज्रसत्त्वबुद्ध-मातरौ परमाक्षरसुखस्वभावौ परमाणुधर्मतातीतौ आदर्शप्रतिसेनास्वप्रतुल्यौ परमाक्षरस्वरूपाविति। अत्र अक्षराणीति रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानानि निरावरणानि पञ्चाक्षराणि महाशून्यान्युक्तानि। तथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वा-काशधातवो निरावरणाः पञ्चाक्षराण्युक्तानीति। षडक्षराणि चक्षुःश्रोत्रघ्राण-जिह्वाकायमनांसि निरावरणानि प्रत्येकस्वस्वविषयग्रहणवर्जितानि। तथा रूपशब्दगन्धरसस्पर्शधर्मधातवो निरावरणाश्च षडक्षराण्युक्तानि। एतानि स्कन्धधात्वायतनान्येकसमरसीभूतानि बिन्दुः शून्यो भवति। स च बिन्दु-रच्युतः सन् परमाक्षर उच्यते परमाक्षरोऽप्यकारोऽकारसंभवः सम्यक्संबुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुंसकपदं सहजकाय उच्यते ज्ञानज्ञेयात्मकः,

हेतुफलयोरभेद्यत्वात्। स च कालचक्रो भगवान् परमाक्षरसुखपदमित्युक्तं भगवता नामसंगीत्यां वज्रधातुमहामण्डलस्तवे प्रथमश्लोकेन—

[१]तद्यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकारसंभवः ।
अकारः सर्ववर्णाग्र्यो महार्थः परमाक्षरः ॥

तथा कृत्यानुष्ठानज्ञानस्तवे द्वितीयश्लोकेनोक्तम्, तद्यथा—

[२]सर्वमन्त्रार्थजनको महाबिन्दुरनक्षरः ।
पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः षडक्षरः ॥

तथा मूलतन्त्रेऽप्युक्तम्, तद्यथा—

आदिकादिसमायोगो वज्रसत्त्वस्य विष्टरः ।
अक्षरोद्भवकायस्य हुंकाराद्यं न चेष्यते ॥

(वि० प्र०, III.६०-६१)

अक्षोभ्यः

स च मणिवरटकावस्थितो निःस्पन्दावस्थितोऽक्षोभ्यः, सकलतथागतवज्रकायत्वेन च्यवनदुःखाभावात्। (अ० क०, पृ० १८)

महाद्वेषोऽक्षोभ्यः। (अ० क०, पृ० २१)

मूत्रमक्षोभ्यः। (वि० प्र०, III. ६९)

सिंहश्चैकान्तवासी विषयविरहितो निर्भयस्त्यागशीलः, अक्षोभ्य इति।

(वि० प्र०, II.११८)

अक्षोभ्यः सिंहः। (वि० प्र०, II.११७)

ततः सर्वाङ्गावयवपरिपूर्णं विज्ञानं हँकारान्वितं सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्, विज्ञानस्कन्धजनकोऽक्षोभ्यः। (वि० प्र०, II.१५८)

ईशानोऽक्षोभ्यः। (वि० प्र०, II.१८६)

---

१. ना० सं० ५.१
२. ना० सं० १०.२

अग्रपुद्गलः

महासुखात्मकज्ञानकायत्वाद् अग्रपुद्गलः। (अ० क०, पृ० ९३)

अचलः

विकल्पवायूपरमादचलः। (अ० क०, पृ० ४४)

अज्ञानम्

अज्ञानमविद्यावासना। (अ० क०, पृ० ७)

अञ्जनसिद्धिः (त्रिधा)

अञ्जन इति निष्पन्नकज्जले। ...अञ्जनसिद्धिरिति त्रिधा— यदि ज्वलित-कज्जलेनाञ्जनं करोति, तदा त्रैलोक्यचारी न कैश्चिदपि दृश्यते, धूमायित-कज्जलाञ्जने भूचरसिद्धिः, ऊष्मायितकज्जलाञ्जने सर्वजनप्रियः। कथं कृत्वा ज्वलनादि भवतीत्याह— कर्मजापप्रयोगतः। अयमर्थः— ईर्ष्या-यमारियोगेन दक्षिणहस्तेनावष्टभ्य कज्जलं तावज्जप्तव्यं यावन्न ज्वलति, धूमायते, ऊष्मायते वा। (कृ० त० टी०, पृ० २०)

अणुः (शुद्धाणुः)

इहाणुशब्देनाचलादयो भूमय उक्ताः, न परमाणवः। शुद्धाणुशब्देन आधार-भूता द्वादशभूमयः, सर्वावरणक्षयत इत्यर्थः। (वि० प्र०, III.११९)

अण्डकोशः

अविद्या संसारवासना सैवाण्डकोशो जगदुत्पत्तिहेतुत्वात्।
(अ० क०, पृ० ५७)

अतिगुप्तः

लब्धे तत्त्वे यावत् स्वतोऽनुभवो न भवति, तावद् गुप्तोऽतिगुप्त इति।
(वि० प्र०, II.७)

अतियोगः

निष्पत्तिः सर्वचक्रस्य अतियोगो विभावितः। (कृ० त०, १७.१०)

अथ

अथेति अकारेणात्र नैरात्म्यप्रतिपादकत्वेन सर्वाकारवरोपेता शून्यता प्रोक्ता। थकारेणाप्यक्षोभ्यस्वभावप्रतिपादनेन निरालम्बकरुणा। ....तयोरद्वैधान्मणि-वरटकान्तःस्थितसहजानन्दशुक्रमेवशब्दाभिधेयमथेति उच्यते।

(अ० क०, पृ० १७८)

अद्वयम्

अद्वयं शून्यताकरुणाभिन्नप्रज्ञोपायाद्वयं समाधिसम्भूतं महासुखस्वरूपं मन्त्र-नीतौ। पारमितानये तु आत्मात्मीयग्राह्यग्राहकादिसकलमनोविस्पन्दरहितं सर्वधर्मनैरात्म्यस्वरूपस्वाभाविककायात्मकचित्तम्। (अ० क०, पृ० १६)

अद्वयवादी

अद्वयः सुखशुक्राद्वैधरूपः, तद्रूपप्रकाशनाददद्वयवादी. (अ० क०, पृ० ३७)

अध्यात्मपीठानि

अध्यात्मपीठादि संज्ञोच्यते— ......इह समयमेलापके पीठं सर्वत्र स्त्रीपद्मं भवति। उपपीठशब्देन पुरुषवज्रं भवति। एवं स्त्रीणां षडायतनं क्षेत्रं पुरुषाणामुपक्षेत्रम्। तथा स्त्रीणां समानवाय्वष्टकं छन्दोहम्, पुरुषाणामुप-छन्दोहम्। एवं स्त्रीणां जिह्वालम्बनं करद्वयं पादद्वयं पायुसव्येतरनाडीद्वयं मूत्रशुक्रनाडीद्वयमेतत् कर्मेन्द्रियदशकं मेलापकम्, पुरुषाणामुपमेलापकम्। एवं घ्राणद्वये मेढ्रे मलनिर्गमं श्रोत्रद्वये चक्षुर्द्वये मुखे गुदे च, एवं श्मशा-नाष्टकं स्त्रीणां पुरुषाणामुपश्मशानमिति समस्तम्। तथोभयशरीरे प्रत्येक-पीठं वामाङ्गं पूर्वम्। उपपीठं पश्चिमं दक्षिणाङ्गम्। एवं द्विधा पीठम्। तथा वामेन्द्रियसमूहं क्षेत्रम्। दक्षिणेन्द्रियसमूहमुपक्षेत्रम्। एवं कूर्मकृकरदेवदत्त-

धनञ्जयचतुष्कं छन्दोहम्। समानोदानव्याननागसमूहमुपच्छन्दोहम्। तथा वामे कर्मेन्द्रियसमूहं मेलापकम्। तथा दक्षिणे कर्मेन्द्रियसमूहमुपमेलापकम्। वामकर्णादिच्छिद्रमलनिर्गमं श्मशानम्। दक्षिणमुपश्मशानमिति। तथा करचरणादिगतमपरविशुद्ध्या पूर्ववामाङ्गं पीठम्। दक्षिणं पश्चिममुपपीठम्। तथा वामबाहुसन्धिः वामोरुकटिसन्धिः क्षेत्रम्। दक्षिणमुपक्षेत्रम्। वामोप-बाहुसन्धिः जानूरुसन्धिश्छन्दोहम्। दक्षिणमुपच्छन्दोहम्। तथा करपाद-सन्धिद्वयं वामे मेलापकम्। दक्षिणमुपमेलापकम्। वामाङ्गुलिनखानि श्मशानम्। दक्षिणमुपश्मशानम्। अथवा उभयबाहुसन्धिद्वयं क्षेत्रम्, ऊरुसन्धिद्वयमुपक्षेत्रम्। एवं छन्दोहादिकमपि करचरणगतमपि चाङ्गुली-कान्तसीम्न इति समयमेलापके पीठादिसमयसंज्ञा योगिना वेदितव्या।

(वि० प्र०, II.१२८-१२९)

अनक्षरः

अच्युतकरुणारसपूर्णत्वादनक्षरः। (अ० क०, पृ० ५५)

अविद्यमानवाच्यवाचकसम्बन्धेन धर्मधातुपरमाक्षरयोगात्मा अनक्षरः।

(अ० क०, पृ० ८८)

परमार्थरूपत्वादनक्षरः। (अ० क०, पृ० ८८)

अनङ्गकायः

चूडामणिचक्रक्रमगतत्वेनानङ्गकायो धर्मधातुर्वज्रानङ्गः।

(अ० क०,पृ० ३१२)

अनागामी

अनागामी क्लेशावशादसंसारित्वात्। (अ० क०, पृ० ३९)

अनादिनिधनः

धर्मधातुज्ञानरूपत्वेन न विद्यते आदिनिधने उत्पादनिरोधौ विरमच्युतिक्षणौ यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० ७०)

अनादिः

अनादिराद्युत्पन्नो निष्प्रपञ्चः सर्वासत्संकल्पवर्जितः। (अ० क०, पृ० ३७)

अनुत्तरपूजा (सप्तविधा)

पापदेशना-पुण्यानुमोदना-निर्वाणकामना-जिनचिरस्थिति-अर्थाध्येषणा-धर्मचक्रप्रवृत्त्यर्थबुद्धयाचना-स्वपुण्यपरिणामना चेति सप्तविधानुत्तरपूजा।

(अ० म०, पृ० ४)

एवं पूजा-पापदेशना-पुण्यानुमोदना-पुण्यपरिणामना-त्रिशरणगमन-बोधिचित्तोत्पाद-मार्गाश्रयणलक्षणमिति सप्तविधानुत्तरपूजा......।

(कृ० त० टी०, पृ० १२४)

अनुत्तरः

चतुर्थाभिसम्बोधिरूपत्वादनुत्तरः। (अ० क०, पृ० ८८)

अनुत्पादानुस्मृतिभावना

प्रकृतिप्रभास्वरं सर्व निर्णि(र्नि)मित्तं निरक्षरम् ।
न द्वयं नाद्वयं शान्तं खसदृशं सुनिर्मलम् ॥

(गु० स०, ७.३५)

अनुयोगः

तन्निष्यन्दोदयो देवोऽनुयोगः कथ्यते। (कृ० त०, १७.९)

तन्निष्यन्दोदय इति। तस्मिन् द्रुते वज्रसत्त्वे संचोद्योत्थापितो देवः कालयमारिः। (कृ० त० टी०, प० १२३)

अनुस्मृतिभावना

बुद्धानुस्मृतिसञ्चोद्योपस्थानस्मृतिभावना ।
भावनाकायवाक्चित्तवज्रानुस्मृतिभावना ॥

कुलानुस्मृतियोगेन क्रोधानुस्मृतिभावना ।
समयानुस्मृतियोगाद् भावयन् बोधिमाप्नुयात् ॥
(गु० स०, ७.१५-१६)

अनुस्मृतिः

अनुस्मृतिर्नाम स्वेष्टदेवतादर्शनं प्रतिबिम्बाकारं विकल्परहितं तस्मादनेक-रश्मिस्फुरद्रूपाकारं प्रभामण्डलम्। ततोऽनेकाकारस्फुरद्रूपां(पं) त्रैधातुकं स्म(स्फ)रणमिति, अनुस्मृत्यङ्गमुच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ६)

चण्डाल्यालोकनं यत्त्रिभवस्याम्बरे साऽनुस्मृतिर्दशविधा प्रोक्ता। ...अनेन अनुस्मृत्यङ्गमुक्तम्। उक्तं च—

[१]डोम्ब्यां चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधरः ॥ इति।

संज्ञास्कन्धो दशविध इति। सा चानुस्मृतिः डोम्ब्यां मध्यनाड्यां दशकामा-वस्थाभेदत इति। अत एवोक्तम्—

[२]चण्डाल्यालोकनं यद्भवति खलु तनौ चाम्बरेऽनुस्मृतिः स्यात् ॥ इति।
(वि० प्र०, II.२१०)

अपराजितः

सर्वकायवाक्चित्तैक्येनाच्युतबोधिचित्तत्वेन परैर्विकल्पोर्मिभिर्न जीयत इत्य-पराजितः। (अ० क०, पृ० ७०)

अपायद्वारम्

पिधानम् अपायद्वाराणां नरकप्रेततिर्यगात्मापायद्वाराणाम्।
(अ० क०, पृ० १०६)

अप्रतिष्ठितनिर्वाणम्

विरमानन्दः संसारत्वात् प्रतिष्ठितः। मण्यग्रात् पतनान्निर्वाणम्, तदभावान्न विद्यते प्रतिष्ठितं च निर्वाणं च यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० ५५)

---

१. का० त० ४.११५
२. का० त० ४.११५

अभवोद्भवः

शून्यतासम्भूतचतुष्कायत्वादभवोद्भवः। (अ० क०, पृ० ९९)

अभिज्ञाः

त्रिस्रोऽभिज्ञाः— ऋद्धिः, परचित्तज्ञानम्, आश्र(स्र)वक्षयज्ञानं च।

(म० त० टी०, पृ० २३)

अभिषेकः

[१]अभिषेकं त्रिधाभेदमस्मिन् तन्त्रे प्रकल्पितम् ।
कलशाभिषेकं प्रथमं द्वितीयं गुह्याभिषेकतः ॥

प्रज्ञाज्ञानं तृतीयं च चतुर्थं तत्पुनस्तथा ।
मन्त्रयोग्यां विशालाक्षीं सपुष्पां शुक्रसम्भवाम् ॥

कुम्भो गुह्याभिषेकश्च प्रज्ञाज्ञानाभिधानकः ।
पुनरेव महाप्रज्ञा तस्या ज्ञानाभिधानकः ॥

कुम्भशब्देन स्तनौ उच्येते। तयोः स्पर्शनाद् यत् क्षरं क्षरसुखम्, स कलशाभिषेकः। गुह्यवज्रप्रवेशाद् यत् क्षरसुखं स गुह्याभिषेकः। पद्मे वज्रस्फारणाद् यत् क्षरसुखं स प्रज्ञाभिषेकः। महामुद्रानुरागेण यदक्षरं सुखं चतुर्थं तत्पुनस्तथाभिषेकः संवरसिद्धये सन्ध्याभाषया चोक्तो भगवता।

(डा० जा० सं० र०, पृ० १)

अभिषेकाग्रलब्धः

इह कलश-गुह्य-प्रज्ञाज्ञानाभिषेकाणामग्रतो महामुद्राप्रज्ञापारमितामहाक्षरसुखक्षणानामन्तिमोऽभिसंबोधिलक्षणोऽच्छेद्यः, स येन भगवता बोधिवृक्षमूले लब्धोऽसौ अभिषेकाग्रलब्धः। (वि० प्र०, II.५)

---

१. गु० त० १८.१११-११२

अभिषेकाः (सप्त)

सेकविशुद्धिरुच्यते—......इह तोयाभिषेको यः स वाय्वादिपञ्चधातुविशुद्धिर्निरावरणतेति। एवं मुकुटाभिषेको विज्ञानादिपञ्चस्कन्धविशुद्धिः। वीरपट्टाभिषेको दानादयो दश शक्तयः पारमितापरिपूर्णायेति. वज्रं वज्रघण्टाभिषेको ललनारसनाविशुद्धिः, चन्द्रादित्यनिरावरणतेति। व्रताभिषेको रूपादिविषयचक्षुरादीन्द्रियविशुद्धिः, दिव्यचक्षुरादिप्रवृत्तिरिति। नामाभिषेको मैत्र्यादियोगश्चतुर्ब्रह्मविहारेण सर्वकालं रागद्वेषादिविशुद्धिः, निरावरणतेति। आज्ञाभिषेकः सम्बोधिलक्ष्मीर्धर्मचक्रप्रवर्तने धर्मदेशना। सा च भवभयमथनी परोपकारतः। कालचक्रानुविद्धाऽच्युतसुखानुविद्धा शून्यतादेशनेति नियमः। एवं च एते सप्ताभिषेका कलुषमलापहरा मण्डले संप्रदेया आचार्येण शिष्येभ्य इति तथागतनियमः सप्ताभिषेकदाने वज्राचार्याणामिति।

(वि० प्र०, II.९५)

अभिसमयः

अभिसमयः प्रभास्वरनिराभासज्ञानसाक्षात्कारः। (अ० क०, पृ० १०६)

अभिसमीयन्ते साक्षात्क्रियन्ते सहजचन्द्रोद्भूतत्वेन येन स तथा।

(अ० क०, पृ० ७६-७७)

अभिसमयः (पटलः)

अभीति अभितः सर्वतः सर्वभावेन समीयते साक्षाद्रूपतया प्राप्यते येनासावभिसमयः, सर्वाज्ञानप्रच्छादकत्वेन पट इव पटः, तं लाति गृह्णातीति पटलः। (कृ० त० टी०, पृ० ११)

अमरेन्द्रः

नैरात्म्ये ऐरावतगतित्वेन पुरन्दरस्वभावत्वादमरेन्द्रः। (अ० क०, पृ० ९१)

अमिताभः

प्रज्ञाज्ञानमेव मूर्तिः शरीरं यस्य स हृदि स्थितोऽमिताभः।

(अ० क०, पृ० १८-१९)

राग इत्यमिताभः। (कृ० त० टी०, पृ० ७)

अमिताभो वृषभः। (वि० प्र०, II.११७)

स्तब्धाक्षो मन्दगामी प्रकृतिगुणजडो मत्स्यगन्धो वृषः स्यादित्यमिताभः।

(वि० प्र०, II.११८)

वामदेवोऽमिताभः। (वि० प्र०, II.१८६)

प्रत्यवेक्षणागन्धर्वसत्त्वं हूँकारान्वितं संज्ञास्कन्धजनकोऽमिताभः।

(वि० प्र०, II.१५८)

शुक्रममिताभः। (वि० प्र०, III. ६९)

अमृतम्

मुक्तत्वादविनाशित्वान्महासुखत्वाच्चामृतम्। (म० त० टी०, पृ० १७)

अमोघगतिः

अमोघाऽव्याहता गतिर्यस्य सोऽमोघगतिः। निरन्तराव्याहतमहासुखशुक्रगत्यागतिस्वरूप इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० ३८)

अमोघजापः

स्फरणं कायमेघेन बुद्धक्षेत्रात् समन्ततः ।
गमनागमनवज्रार्थममोघजापः स उच्यते ॥

(गु० स०, १३.१७)

अमोघपाशः

अमोघोऽवन्ध्यः पाश इव पाशः षडङ्गयोगलक्षणो यस्य स तथा, बोधिचित्तवज्रविनेयानां सत्त्वानां बिम्बदर्शनेन तथताप्रतिभासकत्वात्।

(अ० क०, पृ० ४८)

अमोघसिद्धिः

वाचा(चां) स्वरव्यञ्जनात्मिकानामीश्वरोऽनाहतस्वभावोऽमोघसिद्धिरूर्णाचक्रवर्ती। (अ० क०, पृ० १९)

मांसममोघसिद्धिः। (वि० प्र०, III. ६९)

सारङ्गः 'शीघ्रगामी क्षरलघुविषयस्त्रस्तचित्तोऽतिभीतोऽमोघसिद्धिरिति।
(वि० प्र०, II.११८)

अमोघसिद्धिः मृगः। (वि० प्र०, II.११७)

ही(ह्रीः)कारान्वितः कृत्यानुष्ठानज्ञानं संस्कारस्कन्धजनकोऽमोघसिद्धिंः।
(वि० प्र०, II.१५८)

तत्पुरुषोऽमोघसिद्धिः। (वि० प्र०, II.१८६)

अमोघम्

अमोघमवन्ध्यमव्याहतसुखम्। (अ० क०, पृ० ८६)

अम्बरः

आकाश इत्यम्बरः, भैरुण्डविष्ठा। स च द्विधा— छत्राम्बरः शिखाम्बरश्च। अग्निमध्ये क्षिप्तस्य मूर्ध्नि प्रसारितवस्त्रं यदि शिखाकारेण वस्त्रं भेदयित्वा धूमो निश्चरति, स उत्तमः। यः छत्राकारेण धूमस्थो वसति स मध्यमः, तेनापि संकोचबन्धः। (वि० प्र०, III. १४३)

अरजः

रागविरागमध्यरागरजोऽभावादरजो महारागश्चतुर्थः। (अ० क०, पृ० ६९)

अर्हन्

सम्यक्समाधिवशात् सकलविकल्पक्लेशानरीन् हतवान् इत्यर्हन्।
(अ० क०, पृ० ४०)

अविद्या

अविद्या संसारवासना। (अ० क०, पृ० ५७)

अविद्या (महा)

अविद्या इहानादिरागवासनासत्त्वानाम्, तया रागप्रवृत्तिः। रागोऽपि क्षरः क्षराद् विरागः। विरागो नाम द्वेषः, द्वेषात्मिका मूर्च्छा, मूर्च्छा नाम मोहः। एवं रागद्वेषमोहात्मिका अविद्या नाकाशपुष्पमाला। (वि० प्र०, III. ९७)

भगवतो वचनात् संसारचक्रं क्षररागोऽविद्येति। .....इह यदा क्षररागो नष्टस्तदा परमाक्षरो भवति। परमाक्षरो महारागः। महारागाद् विरागो नष्टः। विरागो नाम द्वेषः। द्वेषक्षयान्महाद्वेषो भवति। महाद्वेषाद् मूर्च्छानाम मोहो नष्टः. मोहक्षयान्महामोहो भवति। महारागमहाद्वेषमहामोहाद्रागद्वेषमोहमानात्मिकाऽविद्या नष्टा। अविद्याक्षयाद् महाऽविद्या भवति।

(वि० प्र०, III. ९८)

अवैवर्तिकः

चतुश्चक्रकर्णिकागतागतत्वेन चतुःशताधिकचतुर्दशसहस्रश्वासनिरोधादवैवर्तिकः, अचलाभूमिलाभीत्यर्थः। (अ० क०,पृ० ३९)

अष्टविधासनम्

......वामजानूपरि दक्षिणपादो गत उत्तानक इति पर्यङ्कः। ......सव्यपादो वामोरुमूर्ध्नि वामोऽपि सव्योरुमूर्ध्नि तिर्यगुत्तानेनेति वज्रासनम्। ......अङ्ककारकूर्मपादवदिति दैत्यासनम्। ......भूम्यां द्वौ पादौ समौ गुल्फौ स्फिच्चकमूललग्नौ ऊर्ध्वं गतं जानुद्वयमूरुद्वयं चेत्युत्कटम्। .....वामपादः पर्यङ्कवद्दक्षिण उत्कटवत् किञ्चिद्दक्षिणे नम्र इति। ......द्वितीयो भेदो दक्षिणः पर्यङ्कवद् वाम उत्कटवत्, किञ्चिद्वामे नम्र इति पर्यङ्कार्धं द्विभेदम्। ......वामचरणं गुदगतं चरणोपरि गुदो निषण्णः, दक्षिणमुत्कटवदिति। .....दक्षिणं गुदगतं चरणोपरि गुदो निषण्णो वाममुत्कटवत्— इत्यष्टविधासनभेदनियमः। (वि० प्र०, II.१७-१८)

अष्टविज्ञानम्

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनआलयविज्ञानक्लिष्टमनोविज्ञानमित्यष्टविज्ञानानां नैरात्म्यरूपत्वेन श्मशानाष्टकमध्यवर्तिनीं भावयेत्। (अ० म०, पृ० ८)

अष्टाङ्गिको मार्गः

अष्टाङ्गिको मार्गः— सम्यग्दृष्टिः, सम्यक्संकल्पः, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्तः, सम्यगाजीवः, सम्यग्व्यायामः, [सम्यक् स्मृतिः], सम्यक्समाधिश्चेति।

(वि० प्र०, III. १४९)

अष्टौ ध्यानविमोक्षाः

अष्टौ ध्यानविमोक्षाः— रूपं पश्यति शून्यम्, अध्यात्मरूपं बहिर्धारूपं पश्यति शून्यम्, शून्यमिति बिम्बं सर्वाकारम्, शुभाशुभदृष्टिकृतं पश्यति शून्यम्, आकाशानन्त्यायतनं पश्यति शून्यम्, विज्ञानानन्त्यायतनं पश्यति शून्यम्, बिम्बे सर्वाकारे आकिञ्चिन्यायतनं पश्यति शून्यम्, नैवसंज्ञा नासंज्ञायतनं पश्यति शून्यम्, संज्ञावेदितनिरोधं पश्यति शून्यताभावनायाम्।

(वि० प्र०, III. १४९)

अष्टौ रूपिणः

अष्टौ रूपिणश्चतुर्महाभूतानि रूपगन्धरसस्पर्शाश्चेति। (वि० प्र०, III. १४९)

असमा (देवता)

अनन्तनिर्माणैर्जगदर्थकरणादसमा। (ख० त० टी०, पृ० २४०)

उत्तरदले हरितवज्रबीजोद्भवा असमा मरकतवर्णा।

(ख० त० टी०, पृ० २४५)

आगमः

महासुखत्वेनागमादागमः। (अ० क०, पृ० १०६)

आत्मवित्

सर्वप्रपञ्चातिक्रान्तत्वेन गगनरूपत्वाद् आत्मवित्। (अ० क०, पृ० ९३)

आत्मा

आत्मा निरालम्बस्वभावमचित्तचित्तम्। (अ० क०, पृ० ३७)

आदिबुद्धः

सांक्लेशिकवैयवदानिकधर्माणां परमार्थतोऽभावेनाकारो निषेधार्थः.। तेन आदिबुद्धः। एकक्षण-पञ्चाकार-विंशत्याकार-मायाजालाभिसंबोधिलक्षणं सुखम् आदिबुद्ध इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० ७०)

आदिबुद्ध आकाशस्वभावः। ...... आदिबुद्ध इति वज्रधरः।

(ख० त० टी०, पृ० २३४)

आनन्दचतुष्टयम्

अ इ उ इति त्रयं कायवाक्चित्ताद्वयत्वेन आनन्दः। आ ई ऊ इति द्विरूपतया परमानन्दः। ए ओ अं इति त्रयमुभयस्वरात्मकं त्रिवज्रं विरमानन्दः। ऐ औ अः इति त्रयं वज्राभिन्नं चतुर्थः सहजानन्दः। एतेन चतुरानन्दस्वभावो भगवाननुत्पादरूपो व्याख्यातः। (अ० क०, पृ० १८)

सहजकायाभिलाषप्रकर्षपर्यन्ततया ऊर्णाब्जे केषाञ्चिन्मते मणिमूले महाकामः, कायानन्द इत्यर्थः। तत्रैव तथैव सहजवागभिलाषतया महासौख्यः, वागानन्दस्वभाव इत्यर्थः। तथैव तत्रैव सहजचित्ताभिलाषतया महामोदश्चित्तानन्द इत्यर्थः। महति रतिरस्यासौ महारतिः, तथैव तत्रैव सहजज्ञानाभिलाषतया ज्ञानानन्द इत्यर्थः। जाग्रदवस्थाविध्वंसेन निर्माणकायस्यानन्दस्य चत्वारो भेदा दर्शिताः। उक्तं च —

निर्विकल्पमहासौख्य आकाङ्क्षालक्षणार्थकः ।
आनन्दोऽसौ सुखागारद्वारदेहलिकोपमः ॥
अहो सौख्यं महासौख्यं अहो भुञ्जे कथं कथम् ।
इत्याकाङ्क्षापरं चित्तं स आनन्दोऽग्रणीरिव ॥

(अ० क०, पृ० २२)

भगवता एकस्मिन्नेव वज्रदेहे एकत्रैवानन्दे आनन्दाश्चत्वार उपदर्शिताः। तत्र कायानन्द-वागानन्द-चित्तानन्द-ज्ञानानन्दभेदेनेति।

(डा० जा० सं० र०, पृ० २)

अष्टाङ्गिको मार्गः

अष्टाङ्गिको मार्गः— सम्यग्दृष्टिः, सम्यक्संकल्पः, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्तः, सम्यगाजीवः, सम्यग्व्यायामः, [सम्यक् स्मृतिः], सम्यक्समाधिश्चेति।

(वि० प्र०, III. १४९)

अष्टौ ध्यानविमोक्षाः

अष्टौ ध्यानविमोक्षाः— रूपं पश्यति शून्यम्, अध्यात्मरूपं बहिर्धारूपं पश्यति शून्यम्, शून्यमिति बिम्बं सर्वाकारम्, शुभाशुभदृष्टिकृतं पश्यति शून्यम्, आकाशानन्त्यायतनं पश्यति शून्यम्, विज्ञानानन्त्यायतनं पश्यति शून्यम्, बिम्बे सर्वाकारे आकिञ्चिन्यायतनं पश्यति शून्यम्, नैवसंज्ञा नासंज्ञायतनं पश्यति शून्यम्, संज्ञावेदितनिरोधं पश्यति शून्यताभावनायाम्।

(वि० प्र०, III. १४९)

अष्टौ रूपिणः

अष्टौ रूपिणश्चतुर्महाभूतानि रूपगन्धरसस्पर्शाश्चेति। (वि० प्र०, III. १४९)

असमा (देवता)

अनन्तनिर्माणैर्जगदर्थकरणादसमा। (ख० त० टी०, पृ० २४०)

उत्तरदले हरितवज्रबीजोद्भवा असमा मरकतवर्णा।

(ख० त० टी०, पृ० २४५)

आगमः

महासुखत्वेनागमादागमः। (अ० क०, पृ० १०६)

आत्मवित्

सर्वप्रपञ्चातिक्रान्तत्वेन गगनरूपत्वाद् आत्मवित्। (अ० क०, पृ० ९३)

आत्मा

आत्मा निरालम्बस्वभावमचित्तचित्तम्। (अ० क०, पृ० ३७)

आदिबुद्धः

सांक्लेशिकवैयवदानिकधर्माणां परमार्थतोऽभावेनाकारो निषेधार्थः.। तेन आदिबुद्धः। एकक्षण-पञ्चाकार-विंशत्याकार-मायाजालाभिसंबोधिलक्षणं सुखम् आदिबुद्ध इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० ७०)

आदिबुद्ध आकाशस्वभावः। ...... आदिबुद्ध इति वज्रधरः।

(ख० त० टी०, पृ० २३४)

आनन्दचतुष्टयम्

अ इ उ इति त्रयं कायवाक्चित्ताद्वयत्वेन आनन्दः। आ ई ऊ इति द्विरूपतया परमानन्दः। ए ओ अं इति त्रयमुभयस्वरात्मकं त्रिवज्रं विरमानन्दः। ऐ औ अः इति त्रयं वज्राभिन्नं चतुर्थः सहजानन्दः। एतेन चतुरानन्दस्वभावो भगवाननुत्पादरूपो व्याख्यातः। (अ० क०, पृ० १८)

सहजकायाभिलाषप्रकर्षपर्यन्ततया ऊर्णाब्जे केषाञ्चिन्मते मणिमूले महाकामः, कायानन्द इत्यर्थः। तत्रैव तथैव सहजवागभिलाषतया महासौख्यः, वागानन्दस्वभाव इत्यर्थः। तथैव तत्रैव सहजचित्ताभिलाषतया महामोदश्चित्तानन्द इत्यर्थः। महति रतिरस्यासौ महारतिः, तथैव तत्रैव सहजज्ञानाभिलाषतया ज्ञानानन्द इत्यर्थः। जाग्रदवस्थाविध्वंसेन निर्माणकायस्यानन्दस्य चत्वारो भेदा दर्शिताः। उक्तं च —

निर्विकल्पमहासौख्य आकाङ्क्षालक्षणार्थकः।
आनन्दोऽसौ सुखागारद्वारदेहलिकोपमः॥
अहो सौख्यं महासौख्यं अहो भुञ्जे कथं कथम्।
इत्याकाङ्क्षापरं चित्तं स आनन्दोऽग्रणीरिव॥

(अ० क०, पृ० २२)

भगवता एकस्मिन्नेव वज्रदेहे एकत्रैवानन्दे आनन्दाश्चत्वार उपदर्शिताः। तत्र कायानन्द-वागानन्द-चित्तानन्द-ज्ञानानन्दभेदेनेति।

(डा० जा० सं० र०, पृ० २)

इह सर्वस्य जगतः कामा मनसि क्षोभं करोति प्रथमानन्दमिति। ततः पूर्णतां याति पूर्णावस्था ललाटे बोधिचित्तपूर्णत्वात्, प्रज्ञालिङ्गनादिना द्वितीयः परमानन्द इति। ततः पूर्णादुत्तमाङ्गाद् मैथुने ज्वालावस्था सबिन्दुं स्रवति शशधरं द्रावयित्वा तृतीयं विरमानन्दं करोतीति। अत ओट्टावस्था बिन्दु-च्यवनकाले कायवाक्चित्तबिन्दूनामवसाने चतुर्बिन्दुनिर्गमकाले सहजानन्दं करोतीति। एवं प्रतिपदादिपञ्चपञ्चकलाभिराकाशवायुतेजोदकपृथिवी-स्वरूपाभिर्नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णानामभिः. अ इ ऋ उ लृ क्। अ ए अर् ओ अल् र्। ह य र व ल डित्येतत् स्वरधर्मिणीभिः। एवं पञ्चमी आनन्द-पूर्णा। दशमी परमानन्दपूर्णा। पूर्णिमा विरमानन्दपूर्णा। सहजानन्द इति षोडशी कला सर्वधातूनां समाहारो मेलापकः समाजः संवर इति।

(वि० प्र०, II.१०८)

आमन्त्रणम्

आमन्त्रणं सर्ववज्राणां सर्ववज्रनिमन्त्रणम् ॥

(गु० स०, पृ० १८.१०८)

आरोलिक्

लक्ष्यलक्षणभावैस्तु सर्वं सर्वेण सर्वतः ।
रमणं लक्षणं लक्ष्यमारोलिगिति कथ्यते ॥

(गु० स०, १८. ४२)

आर्यमार्गः

विकल्परहितत्वाद् आर्यः। मृग्यत इति मार्गः। (अ० क०, पृ० ५६)

आर्याष्टाङ्गिकमार्गः

अविपरीतार्थप्रतिपत्तिः सम्यग्दृष्टिर्महाबला। आरब्धसत्कृत्यापरित्यागः सम्यक्संकल्पश्चक्रवर्तिनी। सत्त्वाविसंवादनवचनं सम्यग्वाग् महावीर्या। दशकुशलानतिक्रमात् कृत्यं सम्यक्कर्मान्तः काकास्या। सत्त्वाविहेठनाया-जीवनं सम्यगाजीव उलूकास्या। कुशलार्थघटनं सम्यग्व्यायामः श्वानास्या।

बुद्धवचनानुस्मरणं सम्यक्स्मृतिः शूकरास्या। सम्यक्समाधिर्भगवती वज्र-वाराही। (अ० म०, पृ० १७)

आवरणानि

तथा चोक्तमार्यवसुबन्धुपादैः—

"......त्रीण्यावरणानि— कुशलानुत्पादः, अपरिपूर्णसम्भारता, अमनसिकारता च। तथा सद्धर्म अगोचरम्, लाभसत्कारपूजायां गौरवम्, सर्वेषु अकारुण्यं चेति"।

पुनश्चोक्तम्— "अप्रतिष्ठितनिर्वाणमप्यावरणं बोधिसत्त्वगोत्राणाम्" इति। तथा मोक्षाभिलाशो(षो)ऽपि बोधिसत्त्वानामावरणमिति विस्तरः।

(डा० जा० सं० र०, पृ० ८)

आवरणानि (पञ्च)

एवं कौकृत्यस्त्यानमिद्धौद्धत्यविचिकित्सेति पञ्चावरणानि परित्यजेदेवं राग-द्वेषमोहमानक्लेशान् परित्यज्यति। (वि० प्र०, II.१५३)

आश्रयपरावृत्तिः

आश्रयः शरीरम्। स तेषां त्रिविधः।......विशुद्धगगनोपमेन तु निष्प्रपञ्चेन प्रकाशात्मनाऽनन्तेन प्रवृत्तिनियमः परावृत्तिः। सा बुद्धानां दौष्ठुल्याश्रय-परावृत्तिः, सैव तेषामनास्रवो धातुरुच्यते, अनाश्रवाणां बुद्धधर्माणां बीजाधारत्वात्। सोऽपि मार्गस्तेषामाश्रयः। तस्य परावृत्तिर्लौकिकेन रूपेणात्यन्तिकी निवृत्तिः, लोकोत्तरेण चात्यन्तिकेन प्रवृत्तिः। सर्वधर्म-तथताऽपि तेषामाश्रयः. तस्य परावृत्तिरागन्तुकसर्वावरणविशुद्धिरात्यन्तिकी।

(ख० त० टी०, २३२)

आस्रवचतुष्टयम्

एवं कामाश्रवं भवाश्रवम् अविद्याश्रवं दृष्ट्याश्रवम्। (वि० प्र०, II.१५३)

इन्द्रजालम्

इन्द्रजालं सैन्यादीनां निर्मापनं(णम्), दर्शनमन्तर्धानं च यथायोगं सदसताम्।
(म० त० टी०, पृ० ११)

इन्द्रनीलम्

सुविशुद्धसाहजिकनीलमणिस्फुरणाद् बोधिचित्तमिन्द्रनीलम्।
(अ० क०, पृ० ८१)

इष्टसिद्धिः

इह बोधिचित्तस्य वामदक्षिणनाडीप्रवाहवशेन वामदक्षिणेन गतस्य सर्वकालं मध्यमाप्रवाहेण षट्सु गुह्यादिकमलेष्वधोगमनादूर्ध्वगमनं नाम चर्या, सा इष्टसिद्धिर्महामुद्रासिद्धिः। (वि० प्र०, II.२१५-२१६)

ईर्ष्या

परसम्पत्त्यसहिष्णुता ईर्ष्या। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

ईर्ष्या अमोघसिद्धिः। (कृ० त० टी०, पृ० ७)

ईश्वरः

ईश्वरस्त्रिलोकस्वामी, नित्यं बोधिचित्तरसास्वादनैश्वर्यात्।
(अ० क०, पृ० ४२)

ईश्वरो वज्रसत्त्वः। (अ० क०, पृ० ७३)

उच्चाटनम्

उच्चाटनं स्थानत्याजनम्। (म० त० टी०, पृ० ११)

उच्छ्वासम्

उच्छ्वासम्, प्राणवायोरूर्ध्वगमनम्। (म० त० टी०, पृ० २५)

उत्तमसेवा

उत्तमं ज्ञानामृतेन च। (गु० स०, १८.१३६)

उपवासः

तत्रोपवासोऽनशनम्। (म० त० टी०, पृ० १३)

उपसाधनम्

खमण्डलसमारूढं बोधिसंयोगभावनैः ।
तच्चित्तं ज्ञानबिम्बेन भावनमुपसाधनम् ॥

(गु० स०, १८.१५९)

उपसाधनकाले तु बिम्बममृतकुण्डलम्। (गु० स०, १८.१७४)

वज्रपद्मसमायोगमुपसाधनमुच्यते। (गु० स०, १८.१७८)

शून्यताबिम्बेऽन्यैश्चक्षुरादिभिर्मांसाद्यैरन्यरूपादिविषयग्रहणमुपसाधनम्। ..... कुलिशकमलजेनामृतेनाच्युतेनोपसाधनं नीतार्थेन, बाह्ये देवतोत्सर्जनेन नेयार्थेनेत्युपसाधनसिद्धिः। (वि० प्र०, II.२०८)

उपायतन्त्रम्

यत्रोपायस्य सञ्चारः प्रज्ञा निश्चला तदुपायतन्त्रम्। (वि० प्र०, III.६)

उपेक्षा

सर्वत्र प्रतिघानुनयरहितधर्मतायां स्वरसवाहितयो(या) प्रवृत्तिलक्षणाम् उपेक्षाम्। (अ० म०, पृ० ४)

तथैव च लोकोत्तरसुखसमन्वयवाञ्छाकारामुपेक्षाम्।

(कृ० त० टी०, पृ० १२४)

उपेक्षा इति अशेषकल्पनाकलङ्कापगमनात्। (डा० जा० सं० र०, पृ० १)

एकक्षणः

एकोऽद्वितीयः क्षणस्तुर्यातीतश्चतुरानन्दैकमूर्तिः सहजसम्बोधिलक्षणः।

(अ० क०, पृ० ७६)

एकक्षणाभिसम्बोधिलक्षणम्

तत एकक्षणाभिसम्बोधिलक्षणं रागारागान्तगाद्यं क्षणमिति. राग इति शुक्ल-पक्षस्तस्यान्तगं षोडशीकलालक्षणम्। अरागः कृष्णः, तस्यादिगं कृष्णपक्षेन प्रवृष्टमभिसम्बोधिकाललक्षणम्, तदेव क्षणमपि वर्धते श्वाससंख्यं द्व्ययुत-द्व्यष्टशतसंख्यमिति। गुह्ये वज्रमण्यग्राद्वर्धते षट्त्रिंशच्छतैः क्षणैः प्राणांस्तत्-संख्यान्मारयित्वा गुह्यपद्मं प्राप्नोति, तेन भूमिद्वयं भवति। एवं नाभौ हृदये कण्ठे ललाटे चतस्रः षडष्टदशभूमयो भवन्ति। उष्णीषे द्वादश सर्वप्राणानां क्षयेणेति। (वि० प्र०, III.५५)

एकक्षणाभिसम्बुद्धः

एकस्मिन्नेव च तुर्यक्षणे सर्वभावाभिन्नं समन्तभद्राभिधानमभिसंबुद्धो वेत्ता। (अ० क०, पृ० ८६)

एकमनः

भावनाचित्तेन सहितमेकाग्रमन एकमनः। (ख० त० टी०, २४९)

एकवीरः

यथा गर्भाधाने बोधिचित्ताधारसहितं मनोविज्ञानमेकं धर्मधातुविषयेणैक-लोलीभूतमेकवीर उच्यतेऽन्तर्भूत स्वाभप्रज्ञा जातकस्य। एवं देवता ककारे-णैकेन एकवीरा सिद्धा। (वि० प्र०, III.९)

एकादश कामाः (धातवः)

नरकप्रेततिर्यङ्मनुष्यासुरचातुर्महाराजकायिकास्त्रायस्त्रिंशद्यामतुषितनिर्माण-रतिपरनिर्मितवशवर्तिनश्चैकादश कामाः। (वि० प्र०, III.८५)

कङ्कालः

कं सुखं कलयतीति कङ्कालः। (अ० क०, पृ० ४९)

कमलम्

कमलं रजःशुक्रयोगेन सितरक्तगुणयुतं स्त्रीपद्मम्। (अ० क०, पृ० ५)

करुणा

दुःखोद्धरणकामेणा(मना)कारां करुणाम्। (अ० म०, पृ० ४)

दुःखाद् दुःखहेतोर्वा समुद्धरणकामनालक्षणां करुणाम्।

(कृ० त० टी०, पृ० ३५,१२३)

गुह्ये वज्रप्रवेशात् ततः समधिकतया करुणा। (डा० जा० सं० र०, पृ० १)

कर्णिकागूढगोचरः

नाभिकमलस्य कर्णिकायां गूढगोचरः कर्णिकागूढगोचरः। गूहनं गूढं गुप्तिः, तदर्थो गोचरः पात्रं गूढगोचरः, रविशशिनोः संपुट इत्यर्थः।

(म० त० टी०, पृ० १४)

कर्तरी (त्रिविधा)

सा च कर्तरी त्रिविधा— स्पर्शकर्तरी, छायाकर्तरी, शब्दकर्तरी, साधकच्छेदनादिति। (वि० प्र०, III.१३२)

कर्मराजाग्री

वाङ्निष्पत्तिः कर्मराजाग्री, कर्मेन्द्रियक्रियाप्रवर्तनात्। (वि० प्र०, II.२०४)

कर्षणम्

कर्षणमित्यानीतदेवताचक्रस्यार्घादिकं दत्त्वाऽतिसन्निहितीकरणम्।

(कृ० त० टी०, पृ० १९)

कलुषम्

रागद्वेषमोहमानेर्ष्यामात्सर्यसमूहः कलुषम्। (वि० प्र०, II.३)

कल्की

कल्को नाम वर्णावर्णानामेकीकरणम्, स कल्कोऽस्यास्तीति कल्की, न कल्केन विना, स एव कल्की। (वि० प्र०, III.९६)

कवज्रतन्त्रम्

प्रत्येको वर्णः षट्त्रिंशद्भेदभिन्नो भवति। एषां सर्वेषां षट्त्रिंशदिति षट्-त्रिंशत्तन्त्रेषु चक्रनाथा अपि भवन्ति षट्त्रिंशद् व्यञ्जनस्थानस्वरूपेणेति प्रथमं कव्यञ्जननायकेन कवज्रतन्त्रमुच्यते। (वि० प्र०, III.५)

कामः

कामं चित्तमिति प्रोक्तं रागद्वेषतमोऽन्वितम्। (गु० स० १८.४८)

कामो महारागः। स एव वज्रसत्त्वो महासत्त्वः परमाक्षरसुख इति।

(डा० जा० सं० र०, पृ० ४)

कायचतुष्टयम्

सर्वाकारवरोपेतः कायो नानाधिमुक्तितः ।
दृश्यते स्वस्वभावेन सत्त्वैर्निर्माणलक्षणः ॥

सर्वसत्त्वरुतैर्ऋद्धिमात्मनो यः प्रकाशते ।
सत्त्वाशयवशेनैष कायः संभोगलक्षणः ॥

नानित्यो नापि नित्यो यो नैको नानेकलक्षणः ।
न भावो नाप्यऽभावोऽसौ धर्मकायो निराश्रयः ॥

शून्यताकरुणाभिन्नो रागारागविवर्जितः ।
न प्रज्ञा नाप्युपायोऽसौ कायः स्वाभाविकोऽपरः ॥

कालचक्रमिति ख्यातं चतुष्कायात्मकं शिवम् ।

(वि० प्र०, II.१४९)

कायजापः

कायवज्राभिसम्बोधिं भावाभावविचारणम् ।
बुद्धकाय इति प्रोक्तः कायजापः स उच्यते ॥
(गु० स०, १३.१३)

कायवज्रजापः

वामे गतिगतः प्राणः कायवज्रजाप इत्युच्यते। (वि० प्र०, II.२०७)

कायः

... उक्तं च —

यत्कायं सर्वबुद्धानां निराभासं निरञ्जनम् ।
अज्ञातमकृतं शुद्धमभावादिविवर्जितम् ॥

[१]आदर्शबिम्बं सकलाङ्गयुक्तं रूपं यथा स्वच्छतरं विभाति ।
अशीत्यनुव्यञ्जनलक्षणाढ्यो देहस्तथा वज्रधरस्य चैव ॥
इन्द्रायुधं वियति दृष्टमनेकवर्णं लोकस्य दर्शयति कर्मशुभानि यद्वत् ।
एवं च वज्रधृग्व्याप्यसितादिवर्णं सम्पादयत्यविकलं खलु कर्म तद्वत् ॥
(अ० क०, पृ० १९)

कायः (चतुर्धा)

इह प्रज्ञा पञ्चदशकलात्मकः शुक्लपक्षः, कृष्णपक्षश्चन्द्रकलाहानिरुपायः। एवं शुक्लो रात्रिः कृष्णो दिवा। अतः सहजकायो न प्रज्ञा नाप्युपायः सहजंतनुरियं बुद्धानाम्। एवं न सच्छुक्लपक्षः, नासत्कलाभावः कृष्णः, न सदसत्, अनयोः परस्परविरोधतो मेलापको नास्ति। न चाप्यनुभयात्मक-मिति न चाभ्यां शुक्लकृष्णपक्षाभ्यां विना तत् सहजसुखम्। एवं चतुष्कोटिपरिशुद्धा षोडशी कला शून्यताधर्मिणी सहजतनुरुच्यते, निष्यन्द-

---

१. स्वा० प्र० ५४-५५

लक्षणात्तुर्यक्षयतो योगिनाम्। एवं नपुसंकमिति सिद्धम्। इह सहजतनुः स्वार्थसम्पत्। परार्थसम्पदे धर्मकायो बभूव सुषुप्तक्षयतः। ......इह ज्ञानं ग्राहकचित्तं योगिनः, विज्ञानं परचित्तज्ञानं ग्राह्यं ज्ञेयलक्षणम्। एवं ग्राहक-चित्तं प्रज्ञा कल्पनारहितत्वात्, योगिनामुपायो ग्राह्यचित्तं परिकल्पितं करुणालक्षणम्। तेन ग्राहकग्राह्यभेदेन प्रज्ञोपायस्वरूपः परार्थकर्ता धर्म-कायः। स च सहजाद् बभूवेति। एवं निष्यन्दो नाभौ सहजः, धर्मचक्रे हृदये विपाकः। सोऽयं धर्मकायः संभोगकायः परार्थसम्पदे प्रतिरवक इवानेक-सत्त्वार्थकर्ता। इह दिव्यचक्षुषा यदतीतानागतं रूपं दृष्टं प्रतिबिम्बाकारं स्वच्छम्, तस्मिन् शब्दो यो निश्चरति स प्रतिशब्दः संभोगकायः प्रज्ञोपाय-स्वरूपः। दिव्यश्रोत्रेण दिव्यविज्ञानं ग्राहकम्, प्रतिशब्दो ग्राह्यः। तेनातीता-नागतकालसंख्यां जानातिः, अमुककल्पेऽमुकयुगेऽमुकवर्षेऽमुकमासेऽमुक-पक्षेऽमुकदिनादिकेऽमुको भूतः, अमुको भविष्यतीति। तेन सत्त्वा वैनेया इति स्वप्नावस्थाक्षयतः कण्ठे पुरुषकारः संभोगकाय ऊर्ध्वरेतसः। सत्त्वानां पाकहेतोर्भवति पुनरसौ सम्भोगकायो निर्माणकायो भवति प्रज्ञोपायात्मकः। एकोऽपि सत्त्वानां नानानिर्माणदर्शनतोऽनेकः। एवमेकानेकयोर्योगो विवृत्या प्रज्ञोपायः, संवृत्या एकानेकविरोधः। स च जाग्रदवस्थाक्षयतो ललाटे वैमल्यो निर्माणकायः "अशेषरूपसन्दर्शी रत्नकेतुर्महामणिः" (ना० सं० ९.२४) इति। एवमेकःसहजः, स एव धर्मः सम्भोगो निर्माणश्चेति चतुर्धेति।

(वि० प्र० III.४५-४६)

कायानुस्मृतिभावना

यत्कायं सर्वबुद्धानां पञ्चस्कन्धप्रपूरितम् ।
बुद्धकायस्वभावेन ममापि तादृशं भवेत् ॥

(गु० स० ७.२८)

कालचक्रम्

क्षर उत्पादनिरोधावस्थालक्षणश्च्युतिक्षणः, स यस्य निधनं गतः, स परमाक्षरोऽच्युतक्षणः काल इत्यभिधीयते। तदेव वज्रज्ञानमिति। तस्य कालस्य निरावरणं स्कन्धधात्वायतनं चक्रं त्रिभवस्यैकत्वं निरावरणं

ज्ञेयमिति। तदेव वज्रधातुमहामण्डलमित्युच्यते सर्वाकारं सर्वेन्द्रियं बिन्दुरूपं विश्वमायाधरं भगवतः शरीरं प्रज्ञोपायात्मकमित्युक्तं भगवता तन्त्रराजे ...... तद्यथा—

कालं विश्वादिवज्रं पुरुषमनुपमं सर्वगं निष्प्रपञ्चं
कूटस्थं कर्णनासामुखनयनशिरः सर्वतः पाणिपादम् ।
भूतान्तं भूतनाथं त्रिभुवनवरधृक् कारणं कारणानां
विद्याद्यं योगगम्यं परमसुखपदं कालचक्रं नमस्ये ॥

(का० त० ५.२४५)

.....पुनः स एव कालचक्रो भगवान् प्रज्ञोपायात्मको ज्ञेयज्ञानसम्बन्धेनोक्तः। अत्र परमाक्षरज्ञानं सर्वावरणक्षयहेतुभूतं काल इत्युक्त उपायः। ज्ञेयं त्रैधातुकमनन्तभावलक्षणं चक्रम्, तदेव प्रज्ञा। ज्ञानज्ञेययोरेकत्वं कालचक्रमिति। उक्तं भगवता तन्त्रराजे ......कालचक्रस्य चक्रम्। तद्यथा—

बुद्धक्षेत्राण्यनन्तान्यपरिमितगुणा धातवश्चाम्बराद्याः
स्थित्युत्पत्ती विनाशस्त्रिविध इति भवः षड्गतौ सर्वसत्त्वाः ।
बुद्धाः क्रोधाः सुराद्याः सकरुणहृदया बोधिसत्त्वाः सभार्या
एतच्चक्रं जिनस्य त्रिभुवननमितस्यैकमेकस्य शम्भोः ॥

(का० त० ५.१६३)

कालस्य ज्ञानरूपस्य ज्ञेयलक्षणं चक्रम्, अनयोर्ज्ञानज्ञेययोरेकत्वं कालचक्रमिति। अनेनोक्तक्रमेण स एव कालचक्रो भगवानेवंकारो वज्रसत्त्वः सर्वतन्त्रेषु संगीतो जिनैः। (वि० प्र०, III.६१-६२)

इह राग उत्पादकालः, च्युतिर्निरोधकालः, तयोः समापत्तिरक्षरकालः। तस्य चक्रं वज्रधातुमहामण्डलमिति स्कन्धधात्वायतनं निरावरणं वज्रधातुमहामण्डलमित्युच्यते। (वि० प्र०, III.७५)

आदिबुद्धे भगवानाह—

दिनं सूर्यो रजो वज्रं भावभेदैर्निशा शशी ।
शुक्रं पद्मं तयोरैक्यं कालचक्रं महासुखम् ॥ इति।

तथाऽपरतन्त्रान्तरेऽपि भगवता सामान्येनोक्तम्—

दिनस्तु भगवान् वज्री नक्तं प्रज्ञा प्रकीर्तिता ।
आदित्यो हि यथा रुद्रस्तथा चन्द्र उमा मता(तः) ॥

एवं सूर्यचन्द्रदिवानिशाभेदेनाहोरात्रं काल इत्युच्यते। तस्य चक्रं षट्-शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासात्मकं द्वादशाङ्गं प्रतीत्यलक्षणं राशिचक्रं लौकिकसंवृत्योत्पादक्षयहेतुभूतं सर्वसत्त्वानाम्। तथा चाह—

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते सदा ।
कालो हि भगवान् वज्री अहोरात्रस्वरूपवान् ॥ इति।

(वि० प्र०, II.१५०)

कुङ्कुमम्

कुङ्कुमंमिति स्त्रीकुसुमम्। (कृ० त० टी०, पृ० २१)

कुम्भकम्

ततो दृष्टे बिम्बे प्रकुर्यात् प्रतिदिनसमये प्राणवायोर्निरोधमिति कुम्भकम्।

(वि० प्र०, III.५५)

कुलत्रयम्

कुलत्रयमिति कायवाक्चित्तचक्रम्, तेन नाभिचक्रे स्थितो वज्ररूपस्वभावो वैरोचनः। कर्णिकानाडीगतः पिता कायस्य बीजबिन्दुः।

(अ० क०, पृ० १४)

कायवाक्चित्तमेतत् कुलत्रयं महासुखं कुलीनतया धरतीति स तथा।

(अ० क०, पृ० ४७)

कुलत्रयं कायवाक्चित्तानन्दपरमानन्दविरमानन्दरूपं यस्य स तथा।

(अ० क०. पृ० ८८)

कुलम्

कुलमद्वयत्वात्। (अ० क०, पृ० १४)

शतकुलभेदेन शतसमयाः "त्रिकुलं पञ्चकुलं चैव स्वभावैकं शतं कुलम्" इति वचनात् षट्त्रिंशत्कुलानि, चतुःषष्टिकुलानि योगिनीनामेकत्वं शतकुलानि वेदितव्यानीति नियमः। (वि० प्र०, II.१२६)

कुलानुस्मृतिभावना

द्वयेन्द्रियसमापत्त्या बुद्धबिम्बं विभावयेत् ।
रोमकूपाग्रविवरे कुलमेघान् स्फरेद् बुधः ॥

(गु० स०, ७.२४)

कुलिशेशः

कुलिशे वज्ररन्ध्रद्वयाभ्यन्तरे ओडियाने जालन्धरसंज्ञके महासुखस्वभावेन ईश्वरत्वात्। (अ० क०, पृ० ५०)

कुलिशेश्वरः

कुलिशे वज्रशिखरपुरे स्थिरत्वेन ईश्वरत्वात् कुलिशेश्वरः।

(अ० क०, पृ० ५)

कैवल्यज्ञानम्

कैवल्यज्ञानं शुद्धाद्वयधर्मतालक्षणं धर्मकायात्मकम्। (अ० क०, पृ० ४१)

क्रमद्वयम्

[१]क्रमद्वयं समाश्रित्य देशना वज्रिणो मम ।
उत्पत्तिक्रमेणैका उत्पन्नक्रमतोऽपरा ॥ इति।

(वि० प्र०, II.२१२)

क्रोधजापः

श्रृणोति मन्त्राक्षरपदं स्ववज्रैर्घुष्टमण्डलम् ।
क्रोधसमयज्ञानेन क्रोधजापः स उच्यते ॥

(गु० स०, १३.१८)

---

१. गु० त० १८.३३

क्रोधराट्

क्रोधराट् विरमानन्दानन्तरं राजत इति क्रोधराट्, महासुखस्वभावो मञ्जुश्रीरूपः। (अ० क०, पृ० ४९)

क्रोधः

क्रोधेन सर्वधर्मशून्यतास्फुटीभावेन, क्रोधे विरमपर्यन्ते वा, 'क्रोधो विरम-पर्यन्तः' इति पीठविवृतिः। (अ० क०, पृ० ६)

क्रोधानुस्मृतिभावना

द्वयेन्द्रियसमापत्त्या क्रोधेश्वरं विभावयेत् ।
रोमकूपाग्रविवरे क्रोधमेघान् स्फरेद् बुधः ॥

(गु० स०, ७.२५)

क्रोधेन्द्राः

टक्किराजादयः षट्काः क्रोधेन्द्रा इति विश्रुताः।
(गु० स०, १८.६३)

क्लेशधातवः (अष्टादश)

क्लेशधातवोऽष्टादश अस्थिचर्ममांसरक्तस्नायुमज्जामेदःशुक्रश्लेष्मविण्मूत्र-खेटसिंहा[घा]णयकृत्प्लीहापिशितमलरोमाख्या। (अ० क०, पृ० ८६)

क्लेशः

क्लेशः च्युतिदुःखम्। (अ० क०, पृ० ७)

क्लेशाः (चत्वारः)

क्लेशाः सत्त्वानां चत्वारो रागद्वेषमोहमानाश्चेति। (वि० प्र०, III.१४८)

क्षितिगर्भः

क्षितिशब्देन पञ्चभूतोपलक्षणात् क्षितिगर्भो हेतुः, क्षितिगर्भः सहजानन्द-बिन्दुः। (अ० क०, पृ० ७६)

क्षिप्रसिद्धिः

मन्त्रमुखचर्याचारिणां बोधिसत्त्वानां मन्त्रपदपाठादिना प्राप्तेः क्षिप्रसिद्धिः। (अ० क०, पृ० १०६)

क्षीणास्त्रवः

बोधिचित्तप्रयोगेण तदुत्पादितदृष्टान्तदार्ष्टान्तिकावाच्यतत्त्वसुखत्वेन सकल-परिसमाप्तार्थत्वात्। सद्गुरूपदेशवशेन चतुर्थाभिषेकक्षणे तुरीयक्षणातीतत्वेन शिष्यस्य तत्क्षणाद् एवातीवश्रद्धायोगेन सकलविद्याप्रहाणात् क्षीणा आस्त्रवा यस्य यतो वा स तथा। (अ० क०, पृ० ४०)

क्षेत्रम्

परिशुद्धनाडीचक्रात्मकत्वात् क्षेत्रम्। (अ० क०, पृ० १०६)

खगमुखम्

खगमुखादिति भगमार्गात्। (कृ० त० टी०, पृ० ५४)

खगमुखान्तःस्थमिति साध्यस्त्रीयोनिमध्यस्थम्। (कृ० त० टी०, पृ० ११७)

खड्गयमारिः

दृष्टिपरामर्शशत्रूच्छेदकत्वात् खड्ग इव खड्गः, दृष्टिपरामर्शस्यैव यमात्मकस्यारित्वात् खड्गयमारिः। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

खड्गः

खड्ग इव खड्गः, अच्युतत्वेन सकलनाडीषु स्फरणात्। (अ० क०, पृ० ३९)

खड्गमिति वज्राभिषेकम्। (कृ० त० टी०, पृ० ४४)

कोशः खड्गः। (कृ० त० टी०, पृ० ८३)

खसमः

बुद्धबोधिलक्षणो भगवान् वज्रधरः प्रकृत्या खसमः प्रकृतिरस्य स्वाभाविकः कायः, तेन खसम एव, निराभासानन्तसुविशुद्धप्रकाशानां तथतास्वभावत्वात्। सांभोगिकेन यद्यप्याकारवैचित्र्याद्यथाकारो नैव खसमः, तथापि यथाप्रतिभासं खसम एव। धर्मकायो हि खसमेन तत्त्वेन धर्माननावृतोऽनुभवति संभोगकायस्तथैव परिच्छिनत्ति, अनुभवस्य निष्पन्दत्वात्। ...... संभोगकायोऽपि बुद्धानां यथाप्रतिभासं खसम एव। निर्माणकायस्तु सुतरां खसमः, मायाकायैरपि स्वयं निर्मितस्य पुरुषादेरसत्तयैव परिच्छेदात्। स च वज्रधरो जनकः सर्वबुद्धानाम्। तेऽपि खसमास्तन्निष्यन्दत्वादिति सिद्धान्तः।

(ख० त० टी०, २३१-२३२)

भगवान् स्वयं च खसमः, खसमस्य च वज्रनयस्य प्रवर्तकः।

(ख० त० टी०, २३३)

आकाश इति खसमः, धर्मकायलक्षणत्वात् खसमत्वेन प्रतिभासात्।

(ख० त० टी०, २३४)

खसमानामिति धर्मकायप्रकृतीनां बुद्धानां देवीनां च।

(ख० त० टी०, २४१)

गगनम्

गगनं कमलकुलिशसंयोगे वरटकाकाशदेशः। (अ० क०, पृ० ५७)

गगनोद्भवः

स्वयम्भूरूपत्वाद् गगनोद्भवः। (अ० क०, पृ० ९९)

गणपतिः

गणो मायोपमार्थरूपः, तथागतविद्याप्रभृतयो वा, तेषां पतिर्गणपतिः स्वामी, बोधिचित्तस्वभावत्वात्। (अ० क०, पृ० ३८)

गणाचार्यः

गणानामानन्दपरमानन्दविरमानन्दानामाचार्यः सहजरूपोपदर्शकः।

(अ० क०, पृ० ३८)

गणेशः

गणानां पञ्चस्कन्धादीनां सहजरूपताऽऽपादनेन परमेश्वरत्वाद् गणेशः।

(अ० क०, पृ० ३८)

गीष्पतिः

गीर्ध्वनिः षडक्षरात्मक एकार आधारात्मकः, तस्य पतिः षष्ठो वंकारो वज्रधर आधेयस्वभावः। तथा च वक्ष्यति—

पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यो षडक्षर इति।

एकार-वंकाररूप इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० ८)

गुप्तम्

गुप्तं गूढम्, चित्तवाग्गुह्यमित्यर्थः। (ख० त० टी०, २४३)

बालेषु गोपितम्। केन (काभिः) ? अभूतरूपसन्दर्शिनीभिर्भ्रान्तिभिः। कीदृशम् ? अवाग्गोचरत्वादप्रकाश्यम्। मनोजल्पाविषयत्वादनक्षरम्।

(म० त० टी०, पृ० ३३)

गुरुः

गुरुर्बुद्धो गुरुर्धर्मो गुरुः संघस्तथैव च।
गुरुर्वज्रधरः श्रीमान् गुरुरेवात्र कारणम्॥
गुरुमाराधयेत्तस्माद् बुद्धत्वफलवाञ्छया।

(अ० म०, पृ० ३०)

गुह्यचतुष्टयम्

कायगुह्यं चित्तगुह्यं वाग्गुह्यं कर्मगुह्यं च। (ख० त० टी०, पृ० २३९)

गुह्यधृक्

गुह्यं परमाक्षरचतुर्थबिन्दुः, तद्धरतीति यथा। (अ० क०, पृ० १०)

गुह्यम्

त्रिविधं कायवाक्चित्तं गुह्यमित्यभिधीयते।

(गु० स०, १८.२४)

त्रिकुलं गुह्यमुच्यते। (गु० स०, १८.३६)

गुह्यमप्रकाश्यत्वात्। गुह्यतेऽनेन देवतातत्त्वमिति वा गुह्यम्।

(म० त० टी०, पृ० २५)

गुह्यराट्

गुह्यं श्रावक-प्रत्येकबुद्धयानयोरुत्तरं वज्रयानं कायवाक्चित्तज्ञानैकलोली-भावो वा, तत्र महासुखरूपतया राजत इति गुह्यराट्। पञ्चगुह्यराजत्वाद् वा गुह्यराट्। (अ० क०, पृ० ४)

गुह्येन्द्रः

गुह्येन्द्रः कायवाक्चित्तैश्वर्यलाभी। (अ० क०, पृ० १०)

गुह्येन्द्रं सहजानन्दज्ञानम्। (अ० क०, पृ० १२)

गुह्येश्वरी

अत्र पञ्चकुलानि पञ्चगुह्यानि, तेषामीश्वर्यः सृष्टिसंहारकारिकाः। तत्र तथागतकुलस्येश्वरी बुद्धडाकिनी, वज्रकुलस्य वज्रडाकिनी, मणिकुलस्य रत्नडाकिनी, पद्मकुलस्य पद्मडाकिनी, कर्मकुलस्येश्वरी विश्वडाकिनी। तासामपीश्वरी महामाया। (म० त० टी०, पृ० ३-४)

गौतमः

परमाक्षरसुखत्वादेव गौतमः शाक्यमुनिः सिद्धार्थः। (अ० क०, पृ० ६७)

घण्टालक्षणम्

षड्भागैरामुखं घण्टा तत्र भागचतुष्टयम् ।
शुद्धकात् समयं कार्यमन्यदन्येन निर्मितम् ॥
तत् कम्पमध्यमाकाशं तिर्यगायामयोः समम् ।
दिगुत्पलाष्टकभागे कुम्भभागे परे सृजेत् ॥
ऊर्ध्वभागद्वयेनैव दिशि प्रज्ञामुखं भवेत् ।
मुखोर्ध्वं पूर्ववज्रार्धमिव वज्रार्धमुल्लिखेत् ॥
तथाष्टाद्यङ्गुला घण्टा वज्रानुपवर्तिनी ।
ईषन्मीलिताम्भोजमुखी स्यात् कापि गोमुखी ॥

(कृ० त० टी०, पृ० १०४)

चक्रवर्ती

महासुखशुक्ररूपतया षट्चक्रेषु वर्तितुं शीलमस्य स चक्रवर्तीत्यर्थः।

(अ० क०, पृ० ३८)

चतुरङ्गसाधनम्

इह यथा गर्भस्य कायनिष्पत्तिस्तथा देवतानिष्पत्तौ मण्डलराजाग्री सेवाङ्गम्, यथा वाङ्निष्पत्तिस्तथा कर्मराजाग्र्युपसाधनम्, यथा बोधिचित्तबिन्दु-निष्पत्तिस्तथा बिन्दुयोगः साधनम्, यथा शुक्रच्युतौ सुखोत्पत्तिस्तथा सूक्ष्म-योगो महासाधनम्। (वि० प्र०, III.१०)

चतुर्णां बौद्धानां भावना

चतुर्णां बौद्धानां चित्तवासनाबलेन भगवता पुद्गलवादिनामनित्यपुद्गल-भावनोक्ता, अर्थवादिनां पृथिव्यादिकृत्स्नभावना, विज्ञानवादिनां विज्ञप्ति-मात्रसमाधिः, माध्यमिकानां स्वप्नोपमाक्षराद्वयज्ञानभावना।

(वि० प्र०, III.८७)

चतुर्ब्रह्मविहाराः

चतुर्ब्रह्मविहारा मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षा इति। (वि० प्र०, III.१४८)

चतुर्माराः

सत्त्वानां कायवाक्चित्ताविद्यावासनात्मकाश्चतुर्माराः। तेषु कायावरणं स्कन्धमारः, वागावरणं क्लेशमारः, चित्तावरणं मृत्युमारः, बाह्याविद्याप्रवृत्तिर्देवपुत्रमारः। इयं बाह्याविद्याप्रवृत्तिः शुभाशुभकर्मफलोपभोगपरीक्षकाणां बालमतीनां संसारभोगाभिलाषिणां देवपुत्रमारवाक्येन भवति।

(वि० प्र०, III.९९)

चतुर्मुद्रा

कर्ममुद्रा-महामुद्रा-ज्ञानमुद्रा-समयमुद्रा...उक्तं च चतुर्मुद्रोपदेशे, तद्यथा—

कर्मज्ञानमहामुद्रासमयाख्यः प्रभास्वरः ।
हेतुर्भाव्यस्तथा प्राप्यश्चतुर्थो ह्यविनश्वरः ॥

हेतुरिति प्रथमं कर्ममुद्रोद्भूतं यत्सहजमच्युतसुखम्। उक्तं च भगवता—तत्सत्यमेव, किन्तु संवृत्या लौकिकदृष्टान्तेनादर्शमिव न परमार्थतः। तस्मात् तीक्ष्णेन्द्रियेण न ग्राह्य[ा] कर्ममुद्रा। कर्ममुद्रा च स्तनकेशवती कामधातुसुखस्य हेतुः। कर्म चुम्बनालिङ्गनगुह्यस्पर्शवज्रस्फालनादिव्यापारात्मकम्, तेनोपलक्षिता मुद्रा प्रत्ययकारिणी। प्रत्ययोऽत्र क्षरसुखलक्षणः। मुदं सुखविशेषं राति ददातीति मुद्रा भाव्या। ज्ञानमुद्रा, सा च स्वचित्तपरिकल्पिता विश्वमात्रा[ता]दिदेवीस्वभावा पूर्वानुभूता रूपधातुसुखस्य हेतुः। ज्ञानं पूर्वहसितरमितादिभावनालक्षणम्, प्रत्ययोऽत्र स्पन्दसुखलक्षणः। स्कन्धधात्वायतनादिदेवताकारेण विशोध्य मण्डलचक्रस्वभावं यथाविधिना स्फुटीकृत्य मन्थमन्थानयोगेन ज्ञानवह्निं प्रज्वाल्य यावद् दग्धेऽहं स्रवते शशी ललाटकण्ठहृन्नाभिवज्रकमलकर्णिकाग्रतः। बोधिचित्तरूपेण विषयेन्द्रियसमस्तमहासुखसागरस्य यदेकलोलीभूततन्मयसमाधिमापन्नो भूत्वा तिष्ठेत्, यावत् श्रीमहामुद्राऽभिमुखी भवतीति प्राप्या महामुद्रास्वप्नेन्द्रियजालमनोमयसदृशी। महती चासौ [मुद्रा] महामुद्रा चेति कृत्वा। महत्त्वं पुनरस्याः सर्वाकारवरोपेतत्वं न प्रादेशिकत्वम्, मुद्रयतेऽनेनेति बोधिचित्तवज्रेण मुद्रा। प्रत्ययोऽत्र स्वचित्तपरिकल्पनाधर्मरहितो धूमादिनिमित्तपूर्वकः स्वचित्त-

प्रतिभासो योगिगम्यः प्रतिसेनावदिति। तामालिङ्गय यावत्समयमुद्रा साक्षात् क्रियते। अविनश्वरा परमाक्षरस्वरूपिणी सा च फलरूपमहामुद्रा। मुदं परमाक्षरसुखलक्षणं राति सर्वकालमादत्ते पूर्णावस्थायामचलयोगेनेति मुद्रा। ...... इति कायवाक्चित्तज्ञानविशुद्ध्या मुद्राचतुष्टयमुक्तम्। श्री आदिबुद्धे चोक्तम्[१]—

क्षरः क्षरः [क्षरोऽक्षरः] ततः स्पन्दो निःस्पन्दो विमलोऽपरः।

अब्जे वज्रप्रवेशः शिखिनि च मरुतो बिन्दुपातस्तृतीयः
एतद्योगत्रयस्य प्रकटितनियता कायवाक्चित्तमुद्रा ।
रागारागान्तकाद्या परमसुखनिधिर्योगगम्या चतुर्थी
मुद्राणां सैव माता भवति सुफलदा श्रीगुरोर्वक्त्रमेषा ॥

उक्तं च वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्रे—

कर्ममुद्रां समासाद्य धर्ममुद्रां विभावयेत् ।
तत्र[अत] ऊर्ध्वे महामुद्रा तस्याः समयसम्भवः ॥

अन्यत्र च—

तां मोक्षलक्ष्मीमविनष्टसौख्यीं [ख्यां]
त्यक्त्वा शुभां भगवतीं युवतिं रमन्ते ।
प्रायेण पूर्वार्जितमुग्रकर्मं
येनामृतं त्यज्य विषं पिबन्ति ॥

श्री आदिबुद्धे च—

[२]एता मुद्राश्चतस्रोऽक्षरसुखफलदा योगिना भावनीयाः
सर्वस्मिन् सर्वकालं सुरतरतिगतैर्लोकमार्गप्रयुक्तैः ।
ग्रामारण्यश्मशानेऽशुचिशुचिनिलये वेशमदेवालये च,
वर्णावर्णाभियुक्तैस्तनुबलसुखदैरन्नपानादियुक्तैः ॥

(अ० क०, पृ० ९३-९५)

---

१. का० त० ३.१२६
२. का० त० ५.७४

चतुर्विधो दुर्गः

विकल्प एव चतुर्विधो दुर्गः। (म० त० टी०, पृ० १६)

चतुःसत्यनयाकारः

प्राकृतकल्पितसुखं दुःखम्। तुर्यालक्षणः समुदयः। ज्ञानमण्डलान्तर्गत-कायवाक्चित्तप्रकृतिनिरोधो [निरोधसत्यम्]। निरालम्बस्वचित्तप्रतिभास-जगद्बुद्धबिम्बदर्शनं मार्गः। एतत्सर्वाद्वयत्वमाकारो यस्य स तथा।
(अ० क०, पृ० ८४)

चतुर्विमोक्षाः

एवं चतुर्विमोक्षाः शून्यताऽनिमित्ताऽप्रणिहिताऽनभिसंस्कारा इति।
(वि० प्र०, III.१४८)

चतुःसमयपदम्

वज्रज्ञानचक्रं चतुःसमयपदम्— समयचोदनं समयप्रेरणं समयमन्त्रणं समयबन्धनं चेति। (गु० स० १६.९७)

चतुःस्मृतिसमाधिराट्

हसितेक्षणपाण्यासिद्वन्द्वचतुःसमाधिराजनाच्चतुःस्मृतिसमाधिराट्।
(अ० क०, पृ० ८१)

चत्वार आस्रवाः

सत्त्वानां चत्वार आस्रवाः तद्यथा— कामास्रवो भवास्रवोऽविद्यास्रवो दृष्ट्यास्रव इति। (वि० प्र०, III.१४८)

चत्वार ऋद्धिपादाः

धर्मश्रवणाभिलाषात्यन्तादरलक्षणश्छन्दऋद्धिपादः प्रचण्डा। वीर्यानवरता-भ्यासा वीर्यऋद्धिपादश्चण्डाक्षी। अत्यन्तविचारणा मीमांसाऋद्धिपादः प्रभावती। बोधिसाक्षात्करणाशयातिशयश्चित्तऋद्धिपादो महानासा।
(अ० म०, पृ० १६)

चत्वार ऋद्धिपादाः— छन्दो वीर्यं चित्तं मीमांसेति। (वि० प्र०, III.१४८)

चत्वारि धर्मदानानि

धर्मदानतो दानम् चत्वारि धर्मदानानि— अनित्याः सर्वसंस्काराः, दुःखाः सर्वसंस्काराः, निरात्मानः सर्वधर्माः, शान्तं निर्वाणमिति।

(वि० प्र०, III.१४८)

चत्वारि पीठानि

चतुष्पीठे चोक्तम्—

मन्त्रादात्मपीठम्, आत्मपीठात्परपीठम्, परपीठात्तत्त्वपीठम्।

(डा० जा० सं० र०, पृ० ४)

चत्वारि प्रतिशरणानि

चत्वारि प्रतिशरणानि तद्यथा— अर्थप्रतिशरणता न व्यञ्जनप्रतिशरणता, ज्ञानप्रतिशरणता न विज्ञानप्रतिशरणता, नीतार्थप्रतिशरणता न नेयार्थप्रति-शरणता, धर्मकायप्रतिशरणता न पुद्गलप्रतिशरणता इति।

(वि० प्र०, III.१४८)

चत्वारि सत्यानि

चत्वारि सत्यानि तद्यथा— दुःखसत्यं समुदयसत्यं मार्गसत्यं निरोधसत्यं चेति।

(वि० प्र०, III.१४८)

चत्वारि सम्यक्प्रहाणानि

अनुत्पन्नानां कुशलानां धर्माणामुत्पादनं यमदाढी। उत्पन्नानां कुशलानां धर्माणां संरक्षणं यमदूती उत्पन्नानामकुशलानां धर्माणां प्रहाणं यमद्रंष्ट्रिणी। अनुत्पन्नानामकुशलानां धर्माणामनुत्पादनात् सम्यक्प्रहाणं यममथनी चेति।

(अ० म०, पृ० १७)

चत्वारि सम्यक्प्रहाणानि— अनुत्पन्नदोषाणामनुत्पादाय प्रहाणं छन्दोत्पाद, उत्पन्नपापानां कुशलमूलं प्रतिपक्षः[उत्पादः], अनुत्पन्नकुशलानां समुत्पादनम्, उत्पन्नकुशलमूलानां बुद्धत्वे परिणामना चेति चत्वारि।

(वि० प्र०, III.१४८-१४९)

चत्वारि संग्रहवस्तूनि

चत्वारि संग्रहवस्तूनि— दानम्, प्रियवाक्यम्, अर्थचर्या, समानार्थतेति। अत्रार्थशब्देन महार्थः परमाक्षर , तस्य चर्या समानार्थता चेति।

(वि० प्र०, III.१४८)

चत्वारि स्मृत्युपस्थानानि

रूपस्कन्धपरिज्ञानप्रारम्भलक्षणकायानुस्मृत्युपस्थानं डाकिनी। वेदनास्कन्ध-परिज्ञानप्रारम्भलक्षणवेदनानुस्मृत्युपस्थानं लामा। संज्ञासंस्कारस्कन्धमाया-रूपत्वाच्च धारणलक्षणधर्मानुस्मृत्युपस्थानं खण्डरोहा। विज्ञानस्कन्ध-स्वरूपप्रविभेदलक्षणविशुद्ध्या चित्तानुस्मृत्युपस्थानं रूपिणी।

(अ० म०, पृ० १६)

कायानुस्मृतिः, वेदनानुस्मृतिः, चित्तानुस्मृतिः, धर्मानुस्मृतिश्च।

(वि० प्र०, III.१४८)

चत्वारिंशत् क्षणाः

रागो रक्तं तुष्टं मध्यमतुष्टं अतितुष्टं हर्षणं प्रामोद्यं विस्मयो हसितमाह्लादन-लिङ्गनं चूषणं [स्थैर्यं] वीर्यं मानः करणं हरणं बलमुत्साहः साहसं मध्यमसाहसमुत्तमसाहसं रौद्रं विलासो वैरं शुभं वाक्स्फुटं सत्यं असत्यं निश्चयो निरुपादानं दाहत्वं चोदनं शौर्यं अलज्जा धूर्तत्वं दुष्टत्वं शठ-कौटिल्यमिति चत्वारिंशत् क्षणा उपायज्ञानस्य। (अ० क०, पृ० ८६)

चत्वारोऽरूपाः (धातवः)

आकाशानन्त्यायतना विज्ञानानन्त्यायतना आकिञ्चन्यानन्त्यायतना नसंज्ञाना-संज्ञानन्त्यायतनाश्चत्वारः। (वि० प्र०, III.८५)

चत्वारो वैशारद्याः

बुद्धानां वैशारद्याश्चत्वारः। तद्यथा— सर्वधर्मारोहणवैशारद्यम्, सर्वधर्मदेशनावैशारद्यम्, निरावरण[नैर्वाणिक]मार्गावतारणवैशारद्यम्। आस्रवक्षयज्ञानप्रहाणवैशारद्यम्। (वि० प्र०, III.१४८)

चन्द्रभक्षणम्

चन्द्रभक्षणमिति नामाभिषेकत्रिकुलसमयवज्राचार्यवज्रव्रताऽऽश्वासव्याकरणानुज्ञाऽनन्तरं प्रज्ञोपायाभिषेकं गृह्णीयात्। (कृ० त० टी०, पृ० ४४)

चित्तजापः

चित्तसमयसम्बोधिः स्थितिवज्रविचारणम् ।
वज्रचित्तमिति प्रोक्तं चित्तजापः स उच्यते ॥

(गु० स०, १३.१५)

मध्यमागतिगतः प्राणश्चित्तजाप इत्युच्यते। (वि० प्र०, II.२०७)

चित्तमचित्तम्

चित्तं विज्ञानम्। सन्त्येकपदान्यवधारणानि। तद्यथा—अब्मात्रभक्षोऽब्भक्षः, वायुमात्रभक्षो वायुभक्ष इत्युच्यते, एवमिहापि विज्ञानव्यतिरिक्तस्यार्थस्य ग्राह्यस्याभावाच्चित्तमात्रं विश्वमिति चित्तशब्दस्यार्थः। तदपि चित्तमचित्तम्। कस्माच्चित्तम्, ग्राह्याभावात्। कस्माच्चि[दचि]त्तम् ? ग्राह्याभावे ग्राहकस्याप्यभावात्। अथ ग्राहकं हि लोके विज्ञानं प्रसिद्धम्। विज्ञाने (नमे)व चेह चित्तम्। तस्माच्चित्तं च तदचित्तं चेति चित्ताचित्तम्।

(म० त० टी०, पृ० १४)

योऽसाविन्दुर्धवलः सूक्ष्मबिन्दुः, स चित्तम्, अन्तःप्रकाशमानत्वात्। या पुनस्तन्मात्रे चित्तस्यावस्थितिः, सा चित्तव्यतिरिक्तार्थानुपलम्भाच्चित्तमात्रता। या तस्य ग्राह्याभावादग्राहकता, सा तस्याचित्तता। अत एवासौ शून्यरूपः। (म० त० टी०, पृ० १८)

चित्तवज्रम्

द्विविधं चित्तवज्रं तु पिण्डचित्तं प्रकाशं चेति। पिण्डचित्तं कर्ममुद्राध्यानम्, प्रकाशं महामुद्रेति। (डा० जा० सं० र०, पृ० २)

चित्तस्यैकाग्रता

चित्तस्यैकाग्रतानाम बिम्बेन सह चित्तस्यैकीकरणमिति।

(डा० जा० सं० र०, पृ० ६)

चित्तानुस्मृतिभावना

यच्चित्तं समन्तभद्रस्य गुह्यकेन्द्रस्य धीमतः ।
ममापि तादृशं चित्तं तद् वज्रधरोपम् ॥

(गु० स०, ७.३०)

चिद्रूपम्

चेतनं चित् ख्यातिः प्रकाशः प्रतिभासनं स्फुटत्वम्, अपरोक्षतेति यावत्। सा रूपमस्येति चिद्रूपम्। चिद्रूपत्वेन चित्त्वलक्षणेन योगाच्चित्तं तदित्यर्थः।

(म० त० टी०, पृ० १४)

या पुनस्तस्य प्रकाशमानता सा चिद्रूपता। (म० त० टी०, पृ० १८)

चुन्दा (देवी)

भावानां सर्वधर्माणां यः स्वभावः प्रकृतिः शून्यता सा चुन्दा।

(ख० त० टी०, पृ० २५०)

चैत्यम्

चैत्यं च सर्वबुद्धानामालयस्थानमुच्यते। (गु० स०, १८.१०६)

चोदनम्

चोदनं बोधनं प्रोक्तं कायवाक्चित्तभावतः।

(गु० स०, १८.१०७)

जगद्गुरुः

जगतां श्वासवातानां कायवाक्चित्तानां वा गुरुस्तत्त्वोपदेष्टा।

(अ० क०, पृ० ८)

सर्वप्रपञ्चोपशमेनाविचलितसुखज्ञानविहारत्वाज्जगद्गुरुः।

(अ० क०, पृ० ९१)

जपम्

जपं तु सृष्टिसंहारं मन्त्रमुच्चार्यभेदतः ।

जपं जल्पनमाख्यातं......

(गु० स०, १८.७२,७४)

जम्भनम्

जम्भनं मूकीकरणम्। (म० त० टी०, पृ० १२)

जातिः (अष्टधा)

एवं पृथ्वीजातिस्तर्वादयः स्थावराः, उदकजातिः स्वेदजाः, तेजोजातिर्जरायुजाः, वायुजातिरण्डजाः, चन्द्रजातिर्नागासुराः, सूर्यजातिर्भूतदेवताः, राहु जातिररूपाः, कालाग्निजातिर्नारकाः, एवमष्ट धाजातिर्वस्तुरूपिणी वस्तुजातिः। (वि० प्र०, II.१७५)

जितारिः

अविद्यादिद्वादशाङ्गनिरोधनाज्जितारिः। (अ० क०, पृ० ३८)

जितेन्द्रियः

उष्णीषमणिशिखराश्रितत्वेन सर्वेन्द्रियविषयानभिभवनीयत्वाद् द्वीन्द्रियसंयोगानुत्पन्नत्वाद्वा जितेन्द्रियः। (अ० क०, पृ० ४०)

जिनकुलानि

रूप-वेदना-संज्ञा-संस्कारा एतानि चत्वारि जिनकुलानि ससुतानीति। ...एवं लोचना-पाण्डरा-मामकी-तारा, जिनकुलानि। (वि० प्र०, II.२२२)

जिनजिक्

जिनान् अक्षोभ्यादीन् जनयतीति नैरुक्त्या जिनजिग्, विमलनिराभासचित्ताव-बोधरूप इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २९४)

सदसन्मध्यमं ख्यातं भूतभौतिकसम्भवम् ।
विग्रहः सर्वसत्त्वानां जिनजिग् जननं जिनः ॥

(गु० स०, १८.४०)

जिनपतिः

सहजादिचतुष्कायात्मनिरावरणस्कन्धा[दयः], तेषां पतिर्जनकः संबुद्ध आदिबुद्ध इति। (वि० प्र०, III.२)

जिनः

रागविरागमध्यरागविजयित्वाज्जिनः। (अ० क०, पृ० ३८)

ज्ञानकायः

समन्तभद्रमहासुखज्ञानकायस्याग्रत्वाज्ज्ञानकायः। (अ० क०, पृ० ९९)

ज्ञानचक्रम्

ज्ञानसत्त्वेन यत्सृष्टं ज्ञानचक्रमिति स्मृतम्। (गु० स०, १८.१०६)

ज्ञानम्

ज्ञानमिति ज्ञानतत्त्वमद्वयं वीराख्यम्। (म० त० टी०, पृ० ३३)

ज्ञानवज्रम्

ज्ञानवज्रेणेति ग्राह्यग्राहकभावरहितचित्तेन छायामायोपमाकारेण।

(कृ० त० टी०, पृ० ४०)

ज्ञानसंभवः

तुर्यातीतास्तिनास्तिव्यतिक्रान्तस्वसंवेद्यत्वाद् ज्ञानसंभवः।

(अ० क०, पृ० ९९)

ज्ञानसूत्रवरम्

ज्ञानं यक्षसमेदेत्यक्षरपञ्चकम्, तेन निष्पादितसूत्रं ज्ञानसूत्रवरम्।

(कृ० त० टी०, पृ० ८८)

तत्त्वम्

तत्त्वं पञ्चकुलं प्रोक्तम्। (गु० स०, १८.३६)

तत्त्वं चोदनभाषणम्। (गु० स०, १८. ७४)

तत्त्वम् (अनुत्तरम्)

तत्त्वमिति सर्वप्रपञ्चरहितं ज्ञानमित्यर्थः। बोधिसत्त्वानामपीदृशं ज्ञानमस्ति। तत्तु बुद्धज्ञानेन सोत्तरम्, ततो विशेषणार्थमाह— अनुत्तरमिति। नास्मादुत्तरमस्तीत्यनुत्तरम्। (म० त० टी०, पृ० ४२)

तत्त्वम् (त्रिधा)

शिवतत्त्वं कामतत्त्वं विषतत्त्वं तथाऽऽज्ञया ।
.... ॥

शिवतत्त्वमिति ख्यातं मूर्खाणामाज्ञया गुरोः ।
चित्तवाक्कायसंक्षोभश्च्युतिः शुक्रस्य देहिनाम्॥

गुरोराज्ञाप्रसादेन कामतत्त्वमिति स्मृतम् ।
विषं निर्विषमित्याहुर्न विषं विषमेव च ॥

स्थावरं जङ्गमं कृत्यं गुरोराज्ञाप्रसादतः ।
विषतत्त्वमिति ख्यातं सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥

त्रितत्त्वं नाक्षरं सौख्यं संभवेत् सर्वदेहिनाम् ।
गुरोराज्ञाप्रसादेन तस्मात् तद्भावयेद् व्रती ॥

(वि० प्र०, III.९१-९२)

तत्त्वम् (द्विविधम्)

श्रीसर्वरहस्यतन्त्रेऽप्युक्तम्—

न किञ्चिद्धेतुतत्त्वं हि फलतत्त्वं तथैव च ।
तत्तत्त्वं तथताज्ञानं तत्र योगी समाचरेत् ॥

हेतुतत्त्वं चित्तप्रतिवेधाश्चत्वार आकाराः। फलतत्त्वं पञ्चम आकारः, तद् उभयमप्यकारकमसत्, तथताज्ञानमेव तयोस्तत्त्वम्, स्वाकाराणामसत्तया परिच्छेदात्। तत्र परिच्छेदे योगी चरेदित्यर्थः। श्रीसमाजेऽप्युक्तम्—

कायाक्षरमनुत्पन्नं वाक्चित्तमनलक्षणम् ।
खवज्रकल्पनाभूतं मिथ्यासंग्रहसंग्रहम् ॥

(गु० स०, १७.३६)

न क्षरतीत्यक्षरं गुह्यं कायगुह्यं वागुह्यं चित्तगुह्यं तत्सर्वमनुत्पन्नमस्वभावं च प्रतिभासते, यथाकारमसत्तया परिच्छेदात्, खवज्रे धर्मकाये धर्मद्रवानुभूते कल्पनाभूतं परिच्छेदात्मकं खसमेन तत्त्वेन सत्तया यथाकारमसत्तया च परिच्छेदात्। मिथ्या च तत् साकारत्वात्, संग्रहश्च तत्सम्यक् परिच्छेदात्, तेन संग्रहोऽस्येति तथोक्तम्, शुद्धलौकिकज्ञानसंगृहीतमित्यर्थः।

(ख० त० टी०, ८१)

तत्त्वः

भावाभावैकरूपतायोगात्तत्त्वः। (अ० क०, पृ० ३०३)

तथता

तथता वामदक्षिणवाहभङ्गेनावधूतीवाहः। उक्तं च—

नाडिकादिस्वभावेन देवतातत्त्वयोगतः ।
तासामेतत्परं शुद्धं स्वरूपं निःस्वभावता ॥

यत्प्रज्ञोपाययोरैक्यं सर्वाकारैकसंवरम् ।
सावधूती विधूतात्मा मध्यमा प्रतिपन्मता ॥

आदिमध्यान्तसंकल्पसम्बन्धानवधानता ।
शुद्धः स्फटिकसंकाशः प्रकाशः सोऽवधूतिकः ॥

(अ० क०, पृ० २६१)

तथतात्मा

महासुखशुक्रलिप्ततया तथतात्मात्मकः। (अ० क०, पृ० ३७)

तथागतः

तथा सहजसुखाकारेणोष्णीषकर्णिकातो वज्रमणिवरटके आगतं विवृत्या मणिवरटकात् पुनरुष्णीषचक्रगतं तथागतम्। उक्तं च—

आगतश्च गतश्चैव व्याप्य विश्वं व्यवस्थितः ।
गत्यागतिनिरोधाश्च[च्च] तथागत इति स्मृतः ॥

(अ० क०, पृ० ७)

यथैवागतो वज्रमणिवरटकम्, तथैव उष्णीषचक्रं गतस्तथागतः।

(अ० क०, पृ० ३८)

तथा तथता कर्मादिमुद्रा, तत्र गतमानन्दादिसुखज्ञानं यस्य स तथागतः।

(अ० क०, पृ० ७०)

तथता धर्मोदया अवधूती, तद्गतत्वेन सर्वगुणोदयाद्दशविधप्राणादिवायुनिरोधेन दशभूमिसमन्तप्रभापर्यन्तफलभूमिप्राप्तस्तथागतः।

(अ० क०, पृ० ८३)

तथताधिगमात् तथागता बुद्धबोधिसत्त्वाः। (म० त० टी०, पृ० २२)

तन्त्रम्

प्रबन्धं तन्त्रमाख्यातं तत् प्रबन्धं त्रिधा भवेत् ।
आधारः प्रकृतिश्चैव असंहार्यप्रभेदतः ॥
प्रकृतिश्चाकृतेर्हेतुरसंहार्यफलं तथा ।
आधारस्तदुपायश्च त्रिभिस्तन्त्रार्थसंग्रहः ॥

(गु० स०, १८.३३-३४)

तन्त्रम् (उत्तरम्)

पञ्चकं त्रिकुलं चैव स्वभावैकशतं कुलम् ।
सहोक्तिर्बोधिवज्रस्य सोत्तरं तन्त्रमिष्यते ॥

(गु० स०, १८.३५)

तन्त्रम् (त्रिविधम्)

तन्त्रमिति प्रबन्धम्। त्रिविधं तन्त्रम्— हेतुतन्त्रम्, फलतन्त्रम्, उपायतन्त्रं च। तत्र प्रकृतिप्रभास्वरमनादिनिधनं चित्तं बोधिचित्तम्, स हेतुस्तद्बीजम्। कस्य बीजम् ? बोधेः। सम्यक्संबोधिः फलम्, निरुत्तरफलत्वात्। सा पुनस्तस्यैव प्रकृतिप्रभास्वरस्य चित्तस्यागन्तुकसर्वावरणक्षयलक्षणा विशुद्धिः। सा बुद्धानां धर्मकायः, संभोगनिर्माणकायसंगृहीतानामनन्तानां बुद्धधर्माणामाश्रय इत्यर्थः। सैव बुद्धानां बोधिधर्मकायो महावज्रधरपदम्। तस्माद्धेतोस्तस्य फलस्य परिनिष्पत्तये साधनमुपायः। स पुनर्बोधिसत्त्वानां त्रिकल्पासंख्येयभावितः सपरिकरो मार्गः। मन्त्रयानेऽत्र तस्यैवातिमहतो बोधिमार्गस्य संक्षेपरूपः, क्षिप्रतरं सुखतरं च बोधिसाधनो मण्डलचक्राद्या-

कारः सपरिकरो मार्गः उपायः। एतान् हेतुफलोपायानधिकृत्य ये देशना-प्रबन्धास्ते यथाक्रमं हेतुतन्त्रं फलतन्त्रमुपायतन्त्रं वा।

(म० त० टी०, पृ० २-३)

तन्त्राणां संख्या

षट्त्रिंशद्योगिनीयोगतन्त्रे मण्डले मण्डलेश इति सिद्धमेककुलतन्त्रं त्रिकुलं पञ्चकुलं यत्तत् तदेव सहस्रलक्षकोटिभेदभिन्नम्। तन्त्राणां संख्या नास्ति, समाजादीनां हेवज्रादीनामनन्तसत्त्वाशयवशादिति तन्त्रनियमः।

(वि० प्र०, III.७)

ताथागतज्ञानम्

इह ताथागतज्ञानं सर्वधर्माणां निःस्वभावतावबोधनं नाम, न सर्वाभावलक्षणं सुषुप्तचित्तम्। उक्तं प्रज्ञापारमितायाम्—''अस्ति तच्चित्तं यच्चित्तमचित्तम्'' (अ० स०, पृ० ३) इति। प्रकृतिप्रभास्वरं नाम यदि स्वसंवेद्यं ताथागतं ज्ञानं न भवति, तदा सत्त्वाशयवशात् तथागतस्य धर्मदेशना न स्यात्। सर्वधर्मा अप्रबोधाः, असंवेद्यत्वात्। अथेन्द्रियद्वारिकं स्वसंवेद्यम्, तदा निष्कलं सर्वगं सर्वव्यापि न भवति, सर्वावरणात्। तस्मात् तथागतं ज्ञानं स्वसंवेद्यं सर्वधर्मस्वभावज्ञं निर्विकल्पमनिन्द्रियमिति। .....अतो निरिन्द्रयं स्वसंवेद्यं ताथागतं ज्ञानमिति। (वि० प्र०, III.७७-७८)

तायी

तायी सुखमयज्ञानसन्तानः तस्यानुपच्छेदेन योगात् तायी, सनातन-श्चतुर्थक्षणरूप इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० ५७)

स्वदृष्टमार्गोक्तिस्तायाः, साऽस्यास्तीति तायी। (कृ० त० टी०, पृ० ५६)

तारा

तारा पद्मिनी... एवं किञ्चित् तन्वी प्रलम्बाऽचपलनयना पद्मिनी वक्रकेशेति तारा। (वि० प्र०, II.११७)

श्वा तारा। (वि० प्र०, II.१२०)

तोयम्

तोयं मद्यं बोधिचित्तं वा। (कृ० त० टी०, पृ० ४५)

तोषणम्

तोषणं दुःखत्यागेन सुखित्वम्। (कृ० त० टी०, पृ० १९)

त्रयस्त्रिंशत् क्षणाः

प्रकृतयो विरागो मध्यविरागोऽतिविरागो यन्मनोगतागतम्। शोको मध्यशोकोऽतिशोकः। सौम्यविकल्पो भीतं मध्यभीतमतिभीतम्। तृष्णा मध्यतृष्णा अतितृष्णा। उपादानं निःशुभ्रं क्षुत्तृष्णा। वेदना समवेदना अतिवेदना। विदविद् धारणापदं प्रत्यवेक्षणं लज्जा कारुण्यं स्नेहो मध्यस्नेहोऽतिस्नेहश्चकितं सञ्चयो मात्सर्यमिति त्रयस्त्रिशत् क्षणाः प्रज्ञाज्ञानस्य।

(अ० क०, पृ० ८६)

त्रिकायधृक्

सहजान्तर्वर्तिकायवाक्चित्तत्वात् त्रिकायधृक्। (अ० क०, पृ० ४४)

त्रिभवपरिज्ञानम्

इहातीतानागतवर्तमाने त्र्यध्वनि त्रिभवस्य यथाभूतदर्शनं परिज्ञानं तदेव त्रिभवावरणक्षयेण हेतुफलनिरोधेन संबुद्धानां यौगपद्येन भवति सर्वज्ञता-सर्वाकारज्ञता-मार्गज्ञता-मार्गाकारज्ञताबलेन। न श्रावकप्रत्येकबुद्धानां बोधिसत्त्वानां च यौगपद्येन त्र्यध्वनि यथाभूतं त्रिभवस्य परिज्ञानं भवति सोपधिनिर्वाणधातुत इति। (वि० प्र०, II.२०२)

त्रिभुवनम्

त्रिभुवनं कामधातु-रूपधातु-अरूपधात्वाख्यम्। (कृ० त० टी०, पृ० १२२)

त्रीणि कायवाक्चित्तगुह्यानि योगिनां मण्डलसंगृहीतानि त्रिभुवनम्।

(ख० त० टी०, २३३)

त्रिभुवनं योगिनीचक्रम्। (ख० त० टी०, २३६)

त्रिमुद्रा

तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रा इति। त्रिविधगतिवशादिति। इह बोधिचित्तस्य क्षरगतिर्मृदुमात्रा, स्पन्दगतिर्मध्यमात्रा, निःस्पन्दगतिरधिमात्रेति। एवं कर्ममुद्रा क्षरसुखदायिनी, ज्ञानमुद्रा स्पन्दसुखदायिनी, महामुद्रा निःस्पन्दसुखदायिनी। एवं त्रिमुद्राभावना षडङ्गयोगे भगवतोक्ता।

(वि० प्र०, II.२१०-२११)

त्रिलोकम्

त्रयो लोकास्त्रिलोकम्, कायवाक्चित्तम्। (अ० क०, पृ० ४)

त्रिलोकं कायवाक्चित्तलक्षणम्। (अ० क०, पृ० १२)

त्रैलोक्यमालोकाद्याभासत्रयम्, शून्यतातिशून्यैकीकरणात्। (अ० क०, पृ० ५३)

त्रैलोक्यं कायत्रयम्। (अ० क०, पृ० ५६)

त्रैलोक्यं कायवाक्चित्तैकत्वम्। (अ० क०, पृ० ७१)

त्रिवज्रम्

सर्वमन्त्रार्थजापेषु त्रिवज्राभेद्यलक्षणम्।
त्रिभेदे वज्रपर्यन्तो न्यासोऽयं त्रिवज्रमुच्यते॥

(गु० स०, १३.८)

त्रिशरणगमनम्

आबोधेर्बुद्धं शरणं गच्छामि। धर्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।

(कृ० त० टी०, पृ० १२३)

एषोऽहमादिबुद्धं शरणं गच्छामि द्विपदानामग्रम्, धर्मं शरणं गच्छामि समग्रं महायानम्, संघं शरणं गच्छामि अवैवर्तिकबोधिसत्त्वगणम्।

(कृ० त० टी०, पृ० १३५)

तथा बुद्धशरणं धर्मशरणं संघशरणमेवं त्रिशरणगमनम्।

(वि० प्र०, III.१४८)

त्रीणि मूलानि

देशको देशनाऽध्येषक इति त्रीणि मूलानि। तद्यथा— बोधिचित्तोत्पादः, आशयविशुद्धिः, अहङ्कारममकारत्यागः। (वि० प्र०, III.१४८)

त्रैधातुकम्

त्रैधातुकं धर्मसंभोगनिर्माणाख्यम्। (अ० क०, पृ० ५६)

त्रैलोक्याचारम्

षडङ्गैस्तस्मान्मज्जनान्निर्वाणसौख्याच्युतमपि सहजं चाक्षरं वै चतुर्थं सुखं बालप्रौढस्पन्दानां परं लोकोपमामतिक्रान्तं त्रैलोक्याचारमुक्तमित्यर्थः। हसितेक्षणस्पर्शालिङ्गनपाण्याप्तिदन्द्वरहितं कर्ममुद्राज्ञानमुद्राहेतुरहितं शून्यतासर्वाकारप्रतिभासलक्षणमिति। (वि० प्र०, III.५३)

त्रैविद्यः

तिस्रो विद्याः कामावचररूपावचरमहामुद्रासिद्धिसाधिका यस्य स एव त्रैविद्यः। (अ० क०, पृ० ९२)

दण्डयमारिः

आसंसारमशेषसत्त्वगतान्तर्ग्राहदृष्टिदोषस्योपस्प[स्फ]रणाद् दण्ड इव दण्ड,: तस्या एव दृष्टेर्नाशहेतुत्वाद् यमात्मिकाया अरित्वाद् दण्डयमारिः।

(कृ० त० टी०, पृ० ३)

दर्पः

अतिमानो दर्पः। (अ० क०, पृ० १०६)

दर्शनम्

दर्शनमिति चुम्बनमालिङ्गनम्। (डा० जा० सं० र०, पृ० २)

दश कामावस्थाः

दशकामावस्थाश्च दशधूमादिनिमित्तानि प्रत्याहाराङ्गरूपाणि। तथा चोक्तं [१]श्रीकालचक्रे—

चिन्ताकाङ्क्षा ज्वरोऽङ्गे वरमुखकमले शुष्कद्रव्याप्रवृत्तिः
कम्पोन्मादश्च घूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा ।
धूमाद्या वज्रिणस्ताः प्रकटदशविधाः प्राणिनोऽङ्गेष्ववस्था
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियताः को जिनः कश्च कामः ॥

(अ० क०, पृ० २६)

दश धातवः

दशभूमयो दशधातूनाम् उपसंहारः। ते च वायुश्चित्तं बोधिचित्तं रक्त-मज्जास्थीनि स्नायुर्मांसमिन्द्रियाणि चर्म चेति। (अ० क०, पृ० ३०)

दश पारमिताः

दश पारमिताः परिपूर्णा भवन्ति— दान-शील-क्षान्ति-वीर्य-ध्यान-प्रज्ञा-उपाय-प्रणिधि-बल-ज्ञानपारमिताश्चेति। (वि० प्र०, III.७६,९६)

दानपारमिता शीलपारमिता क्षान्तिपारमिता वीर्यपारमिता ध्यानपारमिता प्रज्ञापारमिता उपायपारमिता प्रणिधिपारमिता बलपारमिता ज्ञानपारमिता एता दश पारमिता बोधिसत्त्वैः परिपूरणीयाः। (वि० प्र०, III.९६)

दशबलबलिता

दशविधधूमादिनिमित्तबलयोगाद् दशबलबलिता। (अ० क०, पृ० १०६)

दश बोधिसत्त्ववशिताः

बोधिसत्त्ववशिता दश भवन्ति— आयुर्वशिता, कर्मवशिता, परिष्कार-वशिता, अधिमुक्तिवशिता, प्रणिधानवशिता, ऋद्धिवशिता, उपपत्ति-वशिता,धर्मवशिता, चित्तवशिता, ज्ञानवशिता चेति। (वि० प्र०, III.७६)

---

१. का० त० ४.१२६

दश भूमयः

दश भूमयः— प्रमुदिता, विमला, प्रभाकरी, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुखी, दूरङ्गमा, अचला, साधुमती, धर्ममेघा इति। (वि० प्र०, III.७६)

दशभूमीश्वरः

दशानां भूमीनां प्रमुदितानां चतुर्विंशतिपीठोपपीठादिलक्षणानामीश्वरः प्रधानं सहजज्ञानाकारेण व्यापकत्वात्। अस्यायमर्थः—

दानात् प्रमुदितो योगी शीलवान् विमलो भवेत् ।
क्षान्त्या प्रभाकरी वीर्यादर्चिष्ममान् पुण्यवानसौ ॥

ध्यानादभिमुखाकृष्टः प्रज्ञया तु सुदुर्जयाः ।
दूरङ्गमो महोपायो बलवानचलो भवेत् ॥

साधुः[च] प्रणिधानेन धर्ममेघस्तु ज्ञानवान् ।
जिनस्तथागतः प्रत्यात्मवेद्य एकादशो भवेत् ॥

(अ० क०, पृ० २९)

यथा बोधिसत्त्वानां लवमात्रावरणात्, एवं क्रोधेन्द्राणामपि सिद्धं दशभूमीश्वरत्वम्। (वि० प्र०, II.२०२)

दशाकुशलकर्मपथाः

प्राणातिपातमृषावाद-अदत्तादानकाममिथ्याचाररूक्षपैशुन्यसंभिन्नप्रलापाभिध्याव्यापादमिथ्यादृष्टिदशाकुशलाः कर्मपथा न कर्तव्याः।

(वि० प्र०, III.९६)

दंष्ट्राकरालः

दंष्ट्रा चण्डाली, तस्या गुरूपदेशाज्ज्वलितायाः शिखरभूतत्वाद् दंष्ट्राकरालः।

(अ० क०, पृ० ४९)

दानवाधिपः

अनुपमाद्वयश्रीधर्मामृतलाभेन राहुस्वभावत्वाद् दानवाधिपः।

(अ० क०, पृ० ९१)

दिव्या

तत्र दिव्या धूमा मरीचिः खद्योता प्रदीपा पीतदीप्ता श्वेतदीप्ता कृष्णदीप्ता।

(वि० प्र०, II.१९४)

दिव्या धूमादयः। (वि० प्र०, II.१९५)

देवातिदेवः

महारागात्मककायत्वेन ब्रह्मात्मकत्वाद् देवातिदेवः। (अ० क०, पृ० ९१)

देवेन्द्रः

प्रभास्वरचित्तवज्रत्वेन विष्णुस्वभावत्वाद् देवेन्द्रः। (अ० क०, पृ० ९१)

द्रव्याणि

समयं विना न सिद्धयः। ... द्रव्येति समयद्रव्यम्। (म० त० टी०, पृ० ४०)

द्रव्याणि समयवस्तूनि। (म० त० टी०, पृ० ४३)

द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणानि

अत्र महापुरुषलक्षणानि। तद्यथा—तथागतस्य चक्राङ्कितपाणिपादतलौ, चक्रे सहस्रारे परिपूर्णे सनाभिके सुप्रतिष्ठितपादतलौ, सर्वपादतलेन पृथ्वीं स्पृशति, साऽप्युन्नमिते पादतले उन्नमति नमिते नमति, जालावनद्धे पाणिपादतले राजहंसस्येव जालिनीयुतौ हस्तौ, पादौ जातबालस्येवातिमृदुतरौ, सप्तोत्सद इति द्वयोः पादयोर्हस्तयोः स्कन्धयोः कण्ठेऽप्युत्सद इति। करपादयोर्दीर्घाङ्गुल्यो वृत्ता आयता सुपर्वाङ्गुष्ठकाद्या इति. आयतपादपार्ष्णिः, बृहदृजुगात्रः, उच्चैर्जान्वङ्गुल्यग्राः, ऊर्ध्वाग्राणि लोमानि दक्षिणावर्तानि, ऐणेयजङ्घः, कोशावगतबस्तिगुह्यः, हस्तिन इव कोशेन प्रच्छादितं बस्तिगुह्यम्, सुवर्णादिस्निग्धवर्णः, सुवर्णवच्छविः, मलरजोऽग्राहिणी रोमकूपे, एकैकरोम-

भ्रुवोर्मध्ये, ऊर्णोपरि मण्डलं कर्पासांशुशुक्लातिसूक्ष्मशुक्लद्वात्रिंशदात्मकं दक्षिणकुण्डलावृत्तम्। सिंहपूर्वार्धकाय उपरि विशालः सुबृहत्स्कन्धः परिमण्डलग्रीवा, अङ्गप्रत्यङ्गेषु रसरसाग्राः, रसं रसमस्तीति रसरसाग्राः, ताः पुनः शिरा आहारिण्योऽग्रत इति वातपित्तश्लेष्मभिरलिप्तत्वात्। न्यग्रोध-परिमण्डलो महापुरुष इति, आयामव्यायामयोः समन्तादेव उष्णीषावर्त-शिरः, उष्णीषं छत्र इव परिगतमुन्नतम्, आकेशश्रोतसी जिह्वाऽग्रेण स्पृशति, केशपर्यन्तं ललाटं च जिह्वयाऽऽच्छादयति। ब्रह्मस्वरोऽनन्तपर्षदा यथा बाह्ये तथाभ्यन्तरे श्रूयते सर्वसत्त्वैरपि। सिंहस्येव वृत्तहनुः, समा दन्ताश्चत्वारिंशच्छुक्लाः सर्वदोषरहिताः। अभिनीलाद्यं नेत्रम्, नेत्रयोर्यन्नीलं तदभिनीलम्, यत्र रक्तं तदभिरक्तम्, यच्छुक्लं तदभिशुक्लम्। गोपक्ष्माणि वृषभस्येवाक्षिपत्राणि, अध ऊर्ध्वायतनानीति। विश्ववर्णकायः सत्त्वानां नानावर्णावलोकनतः। एवं पादतलादारभ्य उष्णीषान्तानि द्वात्रिंशन्महा-पुरुषलक्षणानि धर्मसंग्रहे[१] उक्तानि, तेन वृत्तैर्न सूचितानीति।

(वि० प्र०, III.१२७)

द्वादश भूमयः

ताश्च भूमयः समन्तप्रभा-अमितप्रभा-गगनप्रभा-वज्रप्रभा-रत्नप्रभा-पद्मप्रभा-कर्मप्रभा-अनुपमा-निरुपमा-प्रज्ञाप्रभा-सर्वज्ञता-प्रत्यात्मवेद्याख्याः।

(अ० क०, पृ० १८)

द्वादश रन्ध्राणि

द्वादशद्वाराणि द्वादशरन्ध्रैः। श्रोत्रे द्वे, घ्राणे द्वे, नेत्रे द्वे, मुखमेकम्, मूत्रविट्शुक्ररन्ध्राणि त्रीणि, स्तनद्वये द्वे— एवं द्वादशरन्ध्राणि।

(वि० प्र०, III.३)

द्वादशाकारसत्यार्थः

निःस्प[ष्य]न्दविपाकपुरुषकारवैमल्यक्षणानां प्रत्येकं त्रैगुण्याद् द्वादशा-कारद् द्वादशभूमयः संवृतिपरमार्थसत्याभेदेन, तद्योगाद् द्वादशाकारसत्यार्थः

---

१. म० सू० सं०, पृ० ३३४

तत्र कायवाक्चित्तविवेकनि:स्प[ष्य]न्दभेदेन प्रथमत्रिकं निर्माणकायस्य, भास-प्रतिभास-प्रकृतिनिराभास-विपाकभेदेन द्वितीयं त्रिकं संभोगकायस्य। चित्तचैतसिकाविद्यापुरुष[षा]कार[वैमल्यविपाक]भेदेन तृतीयं त्रिकं धर्मकायस्य, आनन्दद्वयविरमसहजानन्दवैमल्यभेदेन चतुर्थत्रिकं ज्ञानकायस्य इति। प्राणक्षयेण रजोनिरोधाद्वा निरोधितमेषवृषादिद्वादशराशित्वेन वा द्वादशभूमिलाभाद् द्वादशाकारसत्यार्थः। (अ० क०, पृ० ८५)

द्वादशाङ्गप्रतीत्यसमुत्पादः

अविद्यानाम क्लेशः अविद्यायाः संस्कारः कर्म, संस्काराद्विज्ञानं दुःखमिति प्रथममृदुमात्रा कायवाक्चित्तमिति। ततो विज्ञानान्नामरूपं क्लेशः, नाम-रूपात् षडायतनं कर्म, षडायतनात् स्पर्शो दुःखमिति द्वितीया मध्यमात्रा कायवाक्चित्तम्। ततः स्पर्शाद् वेदना क्लेशः, वेदनायास्तृष्णा कर्म, तृष्णाया ·उपादानं दुःखमिति तृतीयाधिमात्रा कायवाक्चित्तम्। तत उपादानाद्भवः क्लेशः, भवाज्जातिः कर्म, जातेर्जरामरणं दुःखमिति चतुर्थी अधिमात्राधिमात्रा कायवाक्चित्तम्। (वि० प्र०, III.९८)

द्विपदोत्तमः

संवृतिपरमार्थज्ञानद्वयेन द्विपदेनोत्तमः श्रेष्ठो द्विपदोत्तमः। अथवा द्विपदेन वज्रमणिशिखरोष्णीषाप्रतिष्ठप्रतिष्ठाद्वयेन उत्तमो द्वादशभूमीश्वरः। यथोक्तं विमलप्रभायाम्—

एकं पदं वज्रमणौ रजोऽर्के उष्णीषशुक्रे शशिनि द्वितीयम् ।
न्यस्तं सदोच्छेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस्त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य ॥
(अ० क०, पृ० ११)

द्विविधं नैरात्म्यम्

एवं पुद्गलनैरात्म्यं धर्मनैरात्म्यमिति। (वि० प्र०, III.८७)

द्वेषकुलपूजानुस्मृतिभावना

द्वादशाब्दिकां संप्राप्य योषितं स्थिरचेतसम् ।
कुलयोगप्रभेदेन स्वशुक्रेण प्रपूजयेत् ॥
(गु० स०, ८.३६)

द्वेषजापः

द्वेषवज्रोद्भवं चित्तं कायवाक्चित्तसंस्थितम् ।
सत्त्वान् द्वेषालये स्थाप्य द्वेषजापः स उच्यते ॥
(गु० स०, १३.२१)

द्वेषः

अन्योन्यमप्रीतिर्द्वेषः। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

अन्योन्यघट्टनं तत्र द्वेष इत्यभिधीयते। (गु० स०, १८.४९)

धर्मकायः

बुद्धानां दौष्ठुल्याश्रयस्य मार्गाश्रयस्य तथताश्रयस्य च परावृत्तिः, सैव तेषां बोधिः, सैव धर्मकायः। (ख० त० टी०, २३२)

आदिशुद्धमादिशुद्धिर्धर्मकायः। (ख० त० टी०, २३५)

सर्वबुद्धधर्माणां समरसीभावो धर्मकायः। (ख० त० टी०, २३६)

धर्मकेतुः

मणिवरटके सकलक्लेशविजयित्वाद्धर्मस्य तत्त्वरत्नस्य केतुरवाच्य-सुखत्वाच्च ध्वजो धर्मकेतुः। (अ० क०, पृ० ५६)

धर्मगण्डी

सकलसुखमयवाग्वज्रसमाधिविस्फारितसर्वधर्मप्रकाशकधर्मज्योति[ती]-रूपत्वाद् धर्मगण्डी। (अ० क०, पृ० ५५)

धर्मधातुः

कायत्रयात्मकमहासुखैकरूपत्वाद् धर्मधातुः। (अ० क०, पृ० ४२)

धर्मयोनिः

सर्वसत्त्वानामुत्पत्तिस्थानत्वाद् ज्ञानकायत्वाद् धर्मयोनिः।

(अ० क०, पृ० ४५)

धर्मराजः

धर्मेण महासुखवर्षेण लोकान् रञ्जयतीति धर्मराजः।

(अ० क०, पृ० ४२)

धर्मराट्

धर्मो धर्मधातुः स्वाधिष्ठानम्, तत्र तेन वा राजत इति धर्मराट्, सहजज्ञानालोकरूपत्वात्। (अ० क०, पृ० ४२)

धर्मानुस्मृतिभावना

द्वयेन्द्रियसमापत्त्या वज्रधर्मं विभावयेत् ।
रोमकूपाग्रविवरे धर्ममेघान् स्फरेद् बुधः ॥

(गु० स०, ७.२२)

धर्मालोकः

समरसीभूतः सर्वबुद्धानां धर्म एवालोकः, प्रकाशरूपत्वात्।

(ख० त० टी०, पृ० २४२)

धर्माः

स्वलक्षणसाधारणा धर्माः, सर्ववस्तूनीत्यर्थः। (म० त० टी०, पृ० ८)

धर्मेश्वरः

धर्मेण सहजानन्दचतुष्टयेन ईश्वरस्त्रिलोकस्वामी, नित्यं बोधिचित्तरसास्वादनैश्वरत्वात्। (अ० क०, पृ० ४२)

धातुः

सर्वधर्मप्रकृतिकत्वाद्धातुः। (अ० क०, पृ० ४२)

धारणा

धारणाङ्गमाह— ......प्राणापानसमानोदानव्याननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्ज-याख्या वायवस्ते ...अभिलष्यन्ते नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीषकमलकर्णिका-गतभेदेन ...अनेन धारणाङ्गमुक्तम्। तथा चोक्तम्—

[१]बिन्दौ प्राणप्रवेशो ह्युभयगतिहतो धारणा चैकचित्तम् ॥ इति।

(अ० क०, पृ० ३२)

धारणा नाम प्राणस्य माहेन्द्रवारुणाग्निवायुमण्डला[ले] नाभौ कृतिश्चैव [हृदि कण्ठे] ललाटे प्रवेशः। न बाह्यंनिर्गमः। बिन्दौ प्राणप्रवेशनमिति धारणाङ्गमुच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ६)

धारणा प्राणस्य ललाटे एकचित्तं नाम। (वि० प्र०, II.२१०)

ध्यानम्

.....अनेन ध्यानाङ्गमुक्तम्। उक्तं च—

[२]प्रज्ञातर्को विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम् ॥ इति।

ध्यानमक्षोभ्यो विज्ञानस्कन्धः। (अ० क०, पृ० ३१)

चतुरानन्दैकत्वाद् ध्यानम्। (अ० क०, पृ० ४४)

प्रज्ञादिपञ्चविधध्यानरूपत्वाद् ध्यानम्। (अ० क०, पृ० १०६)

ध्यानं नाम शून्येषु सर्वभावेषु चित्तप्रवृत्तिः। (डा० जा० सं० र०, पृ० ५)

तर्क इति भावग्रहणम्। विचार इति तस्य निश्चयार्थः। रतिरिति बिम्बा-सक्तिः अचलसुखमिति बिम्बेन सह चित्तस्यैकीकरणम्। एवं ग्राह्यग्राहक-भेदेन ध्यानं दशविधम्। (वि० प्र०, II.२१०)

---

१. का० त० ४.११६
२. का० त० ४.११६

नपुंसकः

त्रिवज्रसमयं तत्त्वं मध्यमं समयवज्रिणम् ।
तदेव सर्ववज्राणां जापो नपुंसक उच्यते ॥

(गु० स०, १३.२२)

नयः

नीयते व्याख्यायतेऽनेनेति नयः। येन भगवता नेयार्थसूत्रान्तो व्याख्यायते स नयः। (ख० त० टी०, २३५)

नवाङ्गप्रवचनम्

नवाङ्गप्रवचनं संगीतिकाराणाम्— सूत्रं गेयं व्याकरणं गाथोदानं निदानं वृत्तं जातकं वैपुल्याद्भुतं धर्मसंग्रहाय। (वि० प्र०, III.१४९)

नाड्यः (अष्टौ)

एवं हृदयचक्रेऽष्टनाडीनां संज्ञा रोहिणी पूर्णगिरिः पूर्वनाडी, पिङ्गला जालन्धरं दक्षिणनाडी, जया ओड्डियाणं पश्चिमनाडी, इडा अर्बुदमुत्तर-नाडीति दिक्षु। तथा विदिक्षु— ईशाने कुहा गोदावरी, वायव्येऽलम्बुषा रामेश्वरी, नैर्ऋत्ये पूषा देवीकोटम्, आग्नेय्यां हस्तिजिह्वा मालवकम्।

(वि० प्र०, III.१०७)

नाथः

नाथमच्युतबोधिचित्तम्। (अ० क०, पृ० ६)

नाथः समाध्यनुगमात् सकलसत्त्वानामनाभोगेनाधिष्ठानात्।

(अ० क०, पृ० ३०)

अद्वययोगेन सुस्थितत्वान्नाथः। (अ० क०, पृ० ५७)

नामसंगीतिः

नानातन्त्रोपलक्षितमहासुखाकारसहजानन्दसुखस्य नाम्ना सम्यग्ज्ञानं [गानं] नामसंगीतिः। (अ० क०, पृ० ९)

नारीचर्या

बाह्ये पुनः पञ्चतथागतकुलनारीणां ग्रहणं नारीचर्या। (वि० प्र०, II.२१६)

नित्यकायाः

नित्यकायास्तथागता इति वचनाद् नित्या हि तथागतास्त्रिभिरपि कायैः प्रकृतिनित्यतयाऽनादिनिधनत्वात्, साम्भोगिकेनाशंसननित्यतयाऽनिधनत्वात्, नैर्माणिकेन प्रबन्धनित्यतया क्वचिद् विनाशेऽपि तदेवान्यत्रोत्पादात्, अन्यत्र चावस्थानात्, महारण्यलग्नाग्निस्कन्धवत्।

(ख० त० टी०, २४१)

निरपेक्षता (चत्वारः)

...कायभोगनिरपेक्षता, वाग्भोगनिरपेक्षता, चित्तभोगनिरपेक्षता, च्यवनसुख-निरपेक्षता सेवा, कायवाक्चित्तब्रह्मचर्यसंयम इत्यर्थः। (वि० प्र०, II.२०७)

निराकारः

कल्पनापोढाभ्रान्तप्रत्यक्षदर्शनान्निराकारः परमाणुधर्मतातीतः, कल्पना-रहितत्वात् पिहितापिहितनेत्रगम्यः। (अ० क०, पृ० ९०)

निराभोगः

अनाभोगेन पञ्चकामोपभोगसुखत्वान्निर्गत आभोगो विकल्पप्रवृत्तिरस्य स तथा। उक्तं च— ''पूर्वप्रणिधानाहितसततानाभोगवाहि परकार्यम्'' इति।

(अ० क०, पृ० ७०)

निरुत्तरहोमः

शून्यताकरुणाद्वये त्रैधातुकचक्राकारज्ञानवह्नौ तु यथोपदेशं स्कन्धादीन्धन-दहनान्निरुत्तरहोमः। (अ० म०, पृ० २४)

निर्माणकायः

अनाभोगबहिर्जगदर्थनानाप्रकृतिको निर्माणकायः। (अ० क०, पृ० ९१)

निर्वाणम्

भावाभावपरामर्शशून्यत्वान्निर्वाणम्। (अ० क०, पृ० ६८)

एवं भवस्य परिज्ञानं निर्वाणमिति कथ्यते। (वि० प्र०, II.२०२)

सुखदुःखं नाम संसारः, तदभावो नाम निर्वाणमिति। (वि० प्र०, III.८६)

वैभाषिकसौत्रान्तिकयोगाचाराणां सोपधिनिर्वाणम्, माध्यमिकानामुपधिरहितमप्रतिष्ठितनिर्वाणम्, हेतुफलनिरोधात्, सुषुप्तजाग्रदवस्थारहितं स्वप्नतुर्योपममिति. उक्तं भगवता प्रत्यवेक्षणज्ञानस्तवे एकादशमश्लोकेन, तद्यथा—

सर्वोपधिविनिर्मुक्तो व्योमवर्त्मनि सुस्थितः ।
महाचिन्तामणिधरः सर्वरत्नोत्तमो विभुः ॥

(ना० सं० ८.११)

अतः पक्षग्रहरहितं निरुपधिशेषनिर्वाणं सम्यक्सम्बुद्धस्येति।

(वि० प्र०, III.८७)

निर्वाणम् (निर्निमित्तम्)

१यस्यान्तं नादिमध्यं स्थितिमरणभवं शब्दगन्धौ रसश्च
स्पर्शो रूपं न चित्तं प्रकृतिरपुरुषो बन्धमोक्षौ न कर्ता ।
बीजं न व्यक्तकालं न सकलभुवने दुःखसौख्यस्वभावं
निर्वाणं निर्निमित्तं व्यपगतकरणं निर्गुणं तं नमस्ये ॥

(वि० प्र०, III.१०३)

निर्विकल्पः

अभिषेकसमयाचारादिकाले निर्विकल्पेन चित्तेन सर्वकरणान्निर्विकल्पः।

(अ० क०, पृ० ४२)

परमार्थज्ञानविकल्पस्याप्यभावान्निर्विकल्पः। उक्तं च—

---

१. का० त० ५.२४४

१परमार्थविकल्पेऽपि नावलीयेत पण्डितः ।
को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाऽप्यशुभेऽपि वा ॥

(अ० क०, पृ० ६९)

नृकेशः

नृकेशैरिति मारितनरकेशैरर्कतूलसहितैः। (कृ० त० टी०, पृ० २०)

नृतैलम्

नृतैलमिति मारितनरमांसास्थिस्नेहः। (कृ० त० टी०, पृ० २०)

महातैलेन नृतैलेन। (कृ० त० टी०, पृ० ७६)

नैरात्म्यम्

नैरात्म्यं सर्वधर्माणां निराभासलक्षणं विश्वबिम्बरूपम्।

(अ० क०, पृ० ३७)

पञ्च कर्मेन्द्रियाणि

पञ्चकर्मेन्द्रियैर्भगवाक्पाणिपादपायुभिः कर्मेन्द्रियक्रियाभिः।

(वि० प्र०, II.२०१)

पञ्च कामगुणाः

अप्राप्ताः काम्यन्तेऽभिलष्यन्त इति कामाः, प्राप्ता गुण्यन्ते पुनर्भुज्यन्त इति गुणाः, कामाश्च ते गुणाश्चेति कामगुणाः, प्रणीता रूपशब्दगन्धरसस्पर्शाः।

(म० त० टी०, पृ० २१)

पञ्चकायात्मकः

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीय-तुरीयातीतत्वेन पञ्चकायात्मकः।

(अ० क०, पृ० ४४)

---

१. आ० मा० पृ० ६

पञ्चकुलम्

द्वेषो मोहस्तथारागश्चिन्तामणिसमयस्तथा ।
कुला ह्येते तु वै पञ्च काममोक्षप्रसादकाः ॥

(गु० स०, १.४)

पञ्च क्रोधराजानः

उष्णीष-विघ्नान्तक-प्रज्ञान्तक-पद्मान्तक-यमान्तकक्रोधराजानः .....खलु पुनरपराः सुम्भराज-नीलदण्ड-टक्कि-अचल-महाबलाः।

(वि० प्र०, II.२०१)

पञ्च क्षाराणि

ततः पञ्चक्षाराणि— नवक्षारम्, यवक्षारम्, सर्जिकाक्षारम्, टङ्कणक्षारम्, काचलवणक्षारं यथासंख्यमाकाशादिस्वभावम्। (वि० प्र०, III.१३२)

पञ्चचक्षुः

प्रत्याहारध्यानप्राणायामधारणानुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावात् पञ्चचक्षुः।

(अ० क०, पृ० ४५)

पञ्च चक्षूंषि

इह प्रथमं स्वचित्ताभासो मांसचक्षुषा तथागतस्य दृश्यते, दिव्यादिचक्षुषा परचित्तज्ञानं दृश्यते, तेन धर्मसंग्रहे उक्तानि पञ्चचक्षूंषि भगवत इति। एवं क्रमान्मांसचक्षुर्दिव्यचक्षुर्बुद्धचक्षुःप्रज्ञाचक्षुर्ज्ञानचक्षुर्भावनाबलेन भविष्यति।

(वि० प्र०, III.५५)

पञ्चचक्षूंषि— मांसचक्षुर्दिव्यचक्षुर्बुद्धचक्षुः प्रज्ञाचक्षुर्ज्ञानचक्षुश्चेति।

(वि० प्र०, III.१४९)

पञ्चज्ञानात्मकः

पञ्चकुलात्मकत्वेन आदर्शादिज्ञानात्मकत्वात् पञ्चज्ञानात्मकः। उक्तं च—

[1]बोलकक्कोलयोगेन स्पर्शात् काठिन्यवासना ।
कठिनस्य मोहधर्मत्वाद् मोहो वैरोचनो मतः ॥

बोधिचित्तं द्रवं यस्माद् द्रवमब्धातुकं मतन ।
अपामक्षोभ्यरूपत्वाद् द्वेषो ह्यक्षोभ्यनायकः ॥

द्वयोर्घर्षणसंयोगात् तेजः संजायते सदा ।
रागोऽमितवज्रः स्याद् रागस्तेजः समुद्भवः ॥

कक्कोलहेतु यच्चित्तं तत्समीरणरूपकम् ।
ईर्ष्या अमोघसिद्धिः स्यादमोघो वायुसम्भवः ॥

सुखं रागं भवेद्रक्तं रक्तिराकाशलक्षणा ।
आकाशं पिशुनवज्रः स्यात्पिशुनमाकाशसम्भवः ॥ इति।

अथवा मातापितृसंयोगे पितुर्बोधिचित्तबीजेन चन्द्राक्षोभ्यद्रवत्वादादर्शरूपता। मातुः स्वयम्भूकुसुमेन सूर्यरत्नसम्भवरागत्वात् समता। पद्मे वज्रप्रवेशेन महारागबीजेनामिताभसुखत्वात् प्रत्यवेक्षणा। चलनस्पन्दनानुभवामोघसिद्धिरूपत्वात् कृत्यानुष्ठानम्। अन्तराभवविज्ञानप्रवेशेन वर्धनम्, ततो वैरोचनो जननीगर्भान्निष्क्रमणं बिम्बनिष्पत्तिः सुविशुद्धधर्मधातुः।

(अ० क०, पृ० ४४-४५)

पञ्चज्ञानिनः

पञ्चज्ञानान्येषाम्— आदर्शज्ञानम्, समताज्ञानम्, प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्, कृत्यानुष्ठानज्ञानम्, सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानं चेति। तत्रादर्शज्ञानमादर्शवन्निर्मलमनन्तं शाश्वतं च मध्यवर्तिनो ज्ञानत्रयस्याश्रयः, सर्वेषां ज्ञानान्तराणां प्रतिबिम्बोदयस्थानम्, येन प्रतिबिम्बोदयेन तथागताःसर्वाकारसर्वधर्मदर्शिनो भवन्ति। समताज्ञानं सर्वसत्त्वेष्वात्मनिर्विशेषताज्ञानं सदा महामैत्रीमहाकरुणासम्प्रयुक्तम्। प्रत्यवेक्षणाज्ञानं सर्वज्ञेयेष्वव्याहतं सर्वसमाधिधारणीनां निधानं

---

१. हे० त० २.२.५३-५७

धर्ममण्डलेषु सर्वासां स्वविभूतीनां निदर्शकम्, महाधर्मदृष्टीनां प्रवर्षकम्। येन ज्ञानेन तथागताः सर्वलोकधातुष्वनन्तैः कायवाक्चित्तनिर्माणैः प्रतिक्षणमनन्तानां सत्त्वानामर्थं कुर्वन्ति, तदेषां कृत्यानुष्ठानज्ञानम्। येन ज्ञानेन तथागताः सर्वधर्मतथतां सुविशुद्धां पश्यन्ति, तन्मात्रदर्शनात्, सर्वनिमित्तमलानामत्यन्तमप्रख्यानात्, तदेषां सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्। आद्यानि त्रीणि ज्ञानानि संभोगकायः। चतुर्थं निर्माणकायः। पञ्चमं धर्मकायैकदेशः।

(म० त० टी०, पृ० ९)

पञ्च तोयानि

ततः पञ्चतोयानि— शैलोदकं पृथ्वीस्वभावम्, चन्द्रोदकं तोयस्वभावम्, उष्णोदकं वह्निस्वभावम्, विषोदकं वायुस्वभावम्, कर्तर्युदकमाकाशस्वभावम्। (वि० प्र०, III.१३२)

पञ्च दृष्टयः

सत्त्वानां पञ्चदृष्टयः— सत्कायदृष्टिः, अन्तर्ग्राहदृष्टिः, मिथ्यादृष्टिः, दृष्टिपरामर्शदृष्टिः, शीलव्रतपरामर्षदृष्टिश्चेति। (वि० प्र०, III.१४९)

पञ्च देव्यः

इह प्राकृतद्वेषक्षयान्महाद्वेषाद् या प्रज्ञापारमिता शून्यता सर्वाकारा विश्वमाता, सा वज्रधात्वीश्वरी वज्रडाकिनी बभूव। एवं मोहक्षयान्महामोहाल्लोचना। परमकरुणया मामकी मानक्षयान्महाहेतोर्बभूव। रागक्षयान् महारागात् पाण्डरा सा सकलगुणनिधिस्तारिणी सा ईर्ष्याक्षयान्महेर्ष्यातो बभूव। (वि० प्र०, III.४७)

पञ्च पूजोपहाराः

उपह्रियन्त इत्युपहाराः पुष्पधूपदीपगन्धनि[नै]वेद्यानि।

(म० त० टी०, पृ० २०)

पञ्च प्रदीपाः

पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चप्रदीपाः। (वि० प्र०, II.२०७)

पञ्च बलानि

श्रद्धादीन्द्रियाण्येव प्रकर्षपर्यन्तगमनाद्बलानि। श्रद्धाबलं महाभैरवा। वीर्यबलं वायुवेगा। स्मृतिबलं सुराभक्षी। समाधिबलं श्यामादेवी। प्रज्ञाबलं सुभद्रा। (अ० म०, पृ० १६)

पञ्चबलानि— श्रद्धाबलं वीर्यबलं स्मृतिबलं समाधिबलं प्रज्ञाबलं चेति। (वि० प्र०, III.१४९)

पञ्चबुद्धविशुद्धा (तनुः)

एकोऽसौ वज्रसत्त्वः प्रलयघननिभः कृष्णो हेरुको वै बभूव, अच्युत-धर्मेणान्यत्तद्विज्ञानं हेरुकः। स च रौद्राणां पाचनार्थं वज्रसत्त्वस्फरणमिति। स च वज्रसत्त्वो मोहितानां पाचनार्थं समयजिनो वैरोचनो बभूव, अन्यत् तद्रूपम्। स च रत्नेशो दुःखितानां दानार्थं रत्नसंभवो बभूव, अच्युत-धर्मेणान्या सा वेदना सर्वदुःखापहन्त्रीति। स च कमलधरो रागिणां राग-हेतोरमिताभो बभूव, अच्युतधर्मेणान्या सा संज्ञा या अच्युतसुखदात्रीति। स च विघ्नानां ध्वंसनार्थं त्वसिकरकमलोऽमोघसिद्धिर्बभूव, अच्युतधर्मेणान्ये ते संस्काराः, ये निरावरणं चित्तं कुर्वन्ति, माराद्यावरणं विध्वंसयन्तीति पञ्चबुद्धविशुद्धा इति। (वि० प्र०, III.४६)

पञ्चमांसम्

पञ्चमांसं गोकुदहनम्। (कृ० त० टी०, पृ० २१)

पञ्चमांसेनेति गोकुदहनमांसेन। (कृ० त० टी०, पृ० ८०)

पञ्च मुद्राः

पञ्चमुद्रा इति चक्रिकुण्डलकण्ठीरुचकमेखलम्। (कृ० त० टी०, पृ० ११९)

पञ्च लवणानि

ततः पञ्चलवणानि— गतम्, सामुद्रम्, सैन्धवम्, कृष्णलवणम्, चुल्लिका-लवणं पृथिव्यादिस्वभावं यथाक्रमेण। (वि० प्र०, III.१३२)

पञ्च विषाणि

ततः पञ्चविषाणि— पीतमुस्तं भूधातुस्वभावम्, शक्तुकं तोयधातुस्वभावम्, श्रृङ्गी वह्निस्वभावम्, कृष्णविषं वायुस्वभावम्, कालकूटं शून्यस्वभावम्।

(वि० प्र०, III.१३२)

पञ्च शिखाः

आलोकालोकाभासालोकोपलब्धिप्रभास्वरधर्मधातुलक्षणाः पञ्चशिखाः।

(अ० क०, पृ० ६६)

पञ्च स्कन्धाः (लोकोत्तराः)

पञ्चस्कन्धा लोकोत्तराणां बुद्धानाम्— शीलस्कन्धः, समाधिस्कन्धः, प्रज्ञास्कन्धः, विमुक्तिस्कन्धः, विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध इति।

(वि० प्र०, III.१४९)

पञ्चाकारभावना

आदर्शज्ञान...समताज्ञान...प्रत्यवेक्षणाज्ञान...कृत्यानुष्ठानज्ञान....सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्वभावेन, वैरोचनरत्नसंभवामिताभामोघसिद्ध्यक्षोभ्यरूपतथागतस्वभावेनेत्यर्थः। ......तथा च हेतुज्ञानं प्रत्ययज्ञानं धर्मज्ञानं भावनाज्ञानं मुक्तिज्ञानं च। हेतुरादर्शज्ञानं, प्रत्ययः समताज्ञानम्, प्रत्यवेक्षणा धर्मज्ञानम्, कृत्यानुष्ठानं भावनाज्ञानम्, मुक्तिज्ञानं सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्। एवं पञ्चाकाराभिसम्बोधिभावना सूचिता तेन मूलतन्त्रे, पञ्चाकारज्ञानस्तवे पञ्चश्लोकैः पञ्चाकारभावना भगवतोक्ता। तद्यथा—

शून्ये भावसमूहोऽयं कल्पनारूपवर्जितः ।
दृश्यते प्रतिसेनेव कुमार्या दर्पणे यथा ॥

इति लोकोत्तरसत्यरूपस्कन्धः, आदर्शज्ञानम्।

सर्वभावसमो भूत्वा एको भावोऽक्षरः स्थितः ।
अक्षरज्ञानसंभूतो नोच्छेदो न च शाश्वतः ॥

इति वेदनास्कन्धः समताज्ञानम्।

सर्वसंज्ञात्मका वर्णा अकारकुलसंभवाः ।
महाक्षरपदप्राप्ता न संज्ञा न च संज्ञिनः ॥

इति संज्ञास्कन्धः प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्।

अनुत्पन्नेषु धर्मेषु संस्काररहितेषु च ।
न बोधिर्नैव बुद्धत्वं न सत्त्वो नैव जीवितम् ॥

इति संस्कारस्कन्धः कृत्यानुष्ठानज्ञानम्।

विज्ञानधर्मतातीता ज्ञानशुद्धा ह्यनाविलाः ।
प्रकृतिप्रभास्वरा धर्माः धर्मधातुगतिं गताः ॥

इति विज्ञानस्कन्धः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्।

(अ० क०, पृ० ९७-९८); (वि० प्र०, III.१००-१०१)

पञ्चाकारम्

अकारादिस्वरैः षोडशभिर्द्विगुणितैश्चन्द्र आदर्शज्ञानमेक आकारः. ककाराद्भिरधिकैस्तथदधयलसहितैश्चत्वारिंशता व्यञ्जनैर्द्विगुणितैरर्क समताज्ञानं द्वितीय आकारः। बीजाक्षरेण चिह्ननिष्पत्तिः, चिह्ने च बीजमिति प्रत्यवेक्षणाज्ञानं तृतीय आकारः। ततो देवताचक्रस्फरणसंहरणं कृत्यानुष्ठानं चतुर्थ आकारः। तत्र चन्द्रादेः सर्वद्रवीभूय समरसीभावः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानं पञ्चमाकारः। (कृ० त० टी०, पृ० १२१)

पञ्चाक्षरशून्यम्

ज्ञानस्कन्धविज्ञानस्कन्धज्ञानधात्वाकाशमनःश्रोत्रशब्दधर्मधातुदिव्येन्द्रियभगमूत्रस्रावशुक्रच्युतिरूपाणां निरावरणता प्रत्येकं स्वस्वविषयग्रहणविवर्जितत्वं समरसमेकलोलीभूतत्वं परमाक्षरशून्यं योगिस्वसंवेद्यम्, न सर्वाभावलक्षणम्। तदेवाह— तमाकारशून्यं रेखामात्रमनुच्चार्यं कर्तृकाकारं मध्ये, संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणस्पर्शवागिन्द्रियविट्स्रावाणामेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्नात् पूर्वेण इकारशून्यं दण्डाकारं द्वितीयाक्षरशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातुचक्षूरसपाणिगतीनां निरावरणगतं मध्यानाहतचिह्नाद्

दक्षिणेन लृकारशून्यं बिन्दुद्वयं तृतीयाक्षरशून्यम् संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वा-रूपपादेन्द्रियादीनां निरावरणता मध्यानाहतचिह्वाद् वामेन बिन्दुरूपमेक-मनुच्चार्यमूकारशून्यं चतुर्थाक्षरमहाशून्यम्। रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रिय-गन्धपाय्वालापानां समरसत्वमेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्वात् पश्चिमेन तद् हलाकृतिरेकारशून्यं पञ्चाक्षरशून्यम्। एवं वंकारः पञ्चाकारो महाशून्यो निरालम्बकरुणात्मकः, परमाणुधर्मतातीतः, प्रतिसेनातुल्यो योगिगम्यः।

(अ० क०, पृ० ३१४-३१५)

पञ्चाभिज्ञाः

एवं पञ्चाभिज्ञा बोधिसत्त्वानां दिव्यं चक्षुः, दिव्यं श्रोत्रम्, परचित्तज्ञानम्, पूर्वनिवासानुस्मृतिः, आकाशऋद्धिश्चेति। (वि० प्र०, III.१४९)

पञ्चामृतम्

पञ्चामृतमिति मूविरशुमासंज्ञम्। (कृ० त० टी०, पृ० २१,२८)

बाह्ये पञ्चामृतं विडादिकम्। ... अध्यात्मनि पञ्चामृतानि पञ्चस्कन्धाः।

(वि० प्र०, II.२०७)

पञ्चतथागतानां नामभिः पञ्चामृतानां संज्ञा उक्ताः। (वि० प्र०, III.६९)

इह वैरोचनादीनि पञ्चामृतानि गोकुदहनादिपलानि भक्ष्याणि स्वभावशुद्धानि तथागतेनोक्तानि। एभिर्भक्षितैः शरीरमजरामरं भविष्यति, वज्रसत्त्वोऽपि वरदो भविष्यतीति। .....एवं दुष्टाचार्यवचनं प्रमाणीकृत्य ...... अशोधि-तान्यबोधितान्यप्रदीपितान्यनमृतीकृतानि भक्षयन्ति। तानि च भक्षितानि पञ्चामृतानि न तेषां भक्षकाणां बुद्धत्वगुणदायकानि भवन्तीति, तथागत-वचनाप्रबोधत्वादिति। ...... इह यद्वक्तव्यं बालजनैः पञ्चामृतादीनि भक्ष्याणि तथागतेनोक्तानि सर्वतन्त्रराजेषु, तत्सत्यम्, किन्तु योगिनां न प्राकृत-सत्त्वानाम्। येषां मन्त्रबलेन ध्यानबलेन वा शोधितानि बोधितानि प्रदीपि-तान्यमृतीकृतानि विषाणि निर्विषाणि भवन्ति, मद्यानि क्षीराणि भवन्ति, विषोदकादीनि दुष्टानि सत्त्वानां मरणदायकानि रसायनानि भवन्ति,

अस्थीनि पुष्पाणि भवन्ति, दन्ता मुक्ताफलानि भवन्ति, कपालं पद्मं भवन्ति(ति), मांसं पुत्रकेशो भवति, रक्तं सिह्लकं भवति, मूत्रं कस्तूरिका भवति, शुक्रं कर्पूरं भवति, गूथं चतुःसमं भवति, लोमानि कुङ्कुमकेसराणि भवन्ति। एवमनेकदुष्टद्रव्याणि दुष्टस्वभावपरित्यागात् शोधितानि बोधितानि प्रदीपितान्यमृतीकृतानि स्वभावशुद्धानि तथागतेनोक्तानि, न दुष्टस्वभावापरित्यागात्। तानि च विषादीनि स्वभावशुद्धान्यमृतीकृतानि योगिभिर्भक्षितानि शरीरे महाबलपुष्टिकराणि भवन्ति। अतो योगिनां तथागतेनोक्तानि, नान्येषां देवतामन्त्रासाधितानां पर्षन्मूर्खाणां पण्डिताभिमानिनां बकमायाधराणां मठविहारद्रव्याभिलाषिणां प्रेतनरकजातौ जन्मोत्पादनिबद्धानां स्वार्थपरार्थभ्रष्टानां तन्त्रोक्तार्थविपरीतार्थसंदेशकानामपरीक्षजनस्यमहामारकायिकानां भक्ष्याणि भगवतोक्तानीति।

(वि० प्र०, III.७२)

पञ्चेन्द्रियाणि

सत्यरत्नत्रयकर्मफलाभिसंप्रत्ययस्तत्त्वावधारणैश्वर्यादि श्रद्धेन्द्रियं वीरमती। अवश्यकर्तव्यतावधारणं वीर्येन्द्रियं खर्वरी। अविद्याप्रतिपक्षामुषितस्मरणाधिपत्यस्मृतीन्द्रियं लङ्केश्वरी। चित्ताग्रतैश्वर्यात् समाधीन्द्रियं द्रुमच्छाया। हेयोपादेयावधारणैश्वर्यात् प्रज्ञेन्द्रियमैरावती। (अ० म०, पृ० १६)

[श्रद्धेन्द्रियं वीर्येन्द्रियं स्मृतीन्द्रियं समाधीन्द्रियं प्रज्ञेन्द्रियं चेति] एवं पञ्चेन्द्रियाणि। (वि० प्र०, III.१४९)

पञ्चोपविषाणि

उपविषमपरं पञ्चधा वेदितव्यम्। वज्री भूमिस्वभावम्, अर्कस्तोयस्वभावः, धुत्तूरकमग्निस्वभावम्, लाङ्गली वायुस्वभावा, करवीरः शून्यस्वभाव इति।

(वि० प्र०, III.१३२)

पद्मनर्तेश्वरः

अवाच्यसुखबोधिचित्तत्वात् पद्मनर्तेश्वरः (वज्रपद्मोल्लासप्रभुरित्यर्थः)।

(अ० क०, पृ० ७२)

पद्मम्

स्त्रीन्द्रियं पद्मम्। (वि० प्र०, III.६९)

पद्मयमारिः

पद्म इव पद्मः, मिथ्यादृष्टिजनानुपलेपित्वान्मिथ्यादृष्टेर्यमात्मिकाया अरित्वात् पद्मयमारिः। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

पद्मान्तकृत्

अवाच्यात्मका धर्मा अभावनामरूपधीः ।
समयः सर्वधर्माणां तेन पद्मान्तकृद्विभुः ॥
रागो रागोपभोगेन क्षयरागः पद्मान्तकृत् ।
वागन्तकृद्भवेत्तेन समापत्त्यन्तकृत्तथा ॥

(गु० स०, १८.५४,५९)

परदारसेवा

सौख्यं यत् शुक्रबिन्दोरप्रपाताद् भवति सा परदारस्य सेवा। परदारा प्रज्ञापारमिता संसारपारं गता, परो वज्रसत्त्वः संसारपारं गतः, तस्य दारा परदारेति, तस्याःसेवाऽविरागतोऽक्षरसुखतो योगिनाम्। बाह्ये पुनः सेकादिकाले दात्रा स्वभार्यादिका दत्ता या, तस्याः सेवा परदारस्य सेवाऽविरागादिति। यथात्मसमयिनां विरागो न भवति समयभेद इत्यर्थः।

(वि० प्र०, II.२१५)

परमाक्षरसुखम् (भावना)

सर्वयानेषूद्धृत्य संगृहीतं वज्रधरभगवतो हृदयं समन्तभद्रं परमाक्षरमहासुखमाकाशधातुपर्यन्तं समन्तादवभासमानं विशुद्धज्ञानसंभारसम्भूतं गम्भीरोदाररूपधरं प्रकृतिप्रभास्वरमनादिनिधनमात्मात्मीयग्राह्यग्राहकादिविकल्पमलरहितं सर्वकालमसंक्लिष्टं सर्वधर्मस्वभावज्ञं संसारवासनाविनिर्मुक्तं गतागतविरहितं निष्प्रपञ्चरूपं स्वरसप्रवृत्तिजृम्भितविविधसमाधिधारणीनामाधारं भद्रघटकल्पपादपचिन्तामणिवत् सर्वसत्त्वाशापरिपूरकं महामुनीमप्यगोचरं

महतः सत्त्वराशेः परमशान्तिकरं मायोपमं स्वप्नोपमं प्रतिबिम्बोपमं प्रतिश्रुत्कोपमम्। एतदेव त्रिभुवनमहनीयं योगिज्ञानं स्वसंवेद्यं परमाक्षरसुखं योगिना न त्यक्तव्यमिति तथागतनियमः। अस्य भावना मूलतन्त्रराजे ज्ञानपटले तथागतेनोक्ता। तद्यथा—

धूमादीन् भावयित्वा तु चित्तं कृत्वा तु निश्चलम् ।
मध्यमायां शोधयित्वा भावयेत् परमाक्षरम् ॥

पद्मे वज्रं प्रतिष्ठाप्य प्राणं बिन्दौ निवेशयेत् ।
बिन्दूंश्चक्रेषु बिन्दूनां स्पन्दं वज्रे निरोधयेत् ॥

स्तब्धलिङ्गः सदा योगी ऊर्ध्वरेताः सदा भवेत् ।
महामुद्राप्रसङ्गेन वज्रावेशैरधिष्ठितः ॥

एकविंशत्सहस्रैश्च षट्शतैः परमाक्षरैः ।
क्षणैः पूर्णैर्महाराज वज्रसत्त्वः स्वयं भवेत् ॥

(वि० प्र०, III.१०२)

परमानन्दः

परमानन्दः सांक्लेशिकसुखभोगलक्षणत्वाद् भवः संसारः.... रागपरमानन्दः, आसक्तिलक्षणत्वात्। (अ० क०, पृ० ६१)

परवित्

स्वपरयोरद्वैतबोधात् परवित्। (अ० क०, पृ० ९३)

पाण्डरा

पाण्डरा शङ्खिनी। ....निर्लज्जा तीव्रकामा बहुकलहरता शङ्खिनी स्वल्पकेशेति पाण्डरा। (वि० प्र०, II.११७)

अश्वः पाण्डरा। (वि० प्र०, II.१२०)

पातालगमनम्

पातालगमनं बिलप्रवेशः। (म० त० टी०, पृ० १२)

पापदेशना

यन्मया कृतं कारितमनुमोदितं वा यावत् तत् सर्वं पापं देशयामि।

(कृ० त० टी०, पृ० १२३)

पारमिताः (चतस्रः)

उपाय-बल-प्रणिधि-ज्ञानपारमिताश्चतस्रः। उक्तं च—"[१]तस्याः सत्त्वार्थमृद्धिर्भवनिधनमजप्राप्तिरन्याश्चतस्रः सत्त्वार्थमित्युपायः" इति। अथ सत्त्वार्थमित्युपायः। ऋद्धिरिति प्रणिधिः। भवनिधनमिति बलम्। अजप्राप्तिरिति ज्ञानम्। एताश्चतस्रः पारमितास्तस्याः पारमिताया एवान्या इति विशिष्टाकाररूपा इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २५)

पारमिताः (दश)

उदकादिपूर्वकलोकोत्तराद्यभिषेकदानाद् दानम्। कमलकुलिशसंयोगे बोधिचित्तरक्षणात् शीलम्। न क्वचित् स्थिताः सर्वधर्मा इति सर्वधर्मनिर्विकल्पावगमक्षमणात् क्षान्तिः। महास्फुटीभावोद्योगाद् वीर्यम्। चतुर्थध्याननिमज्जनाद् ध्यानम्। प्रज्ञा दिव्यमुद्रा गुरुमुखैकलभ्या। उपायो हठयोगोऽपि समाध्यङ्गस्फुटीभावार्थम्। ....समाध्यङ्गस्फुटीभावेन एकक्षणाभिसम्बोधिक्षणोदये सर्वस्वपरार्थनिष्पत्तिः प्रणिधिः। बलं महासुखसामर्थ्यम्। ज्ञानं मणिवरटकान्तःप्रवृत्तिविवृत्या उष्णीषचक्रपर्यन्तं महासुखज्ञानम्।

(अ० क०, पृ० २८-२९)

पिण्डम्

पिण्डमिति तान्येवात्यन्तपिण्डनात् सुसूक्ष्मीकरणात् पिण्डं बिन्दुमात्रं सर्षपसूक्ष्ममित्यर्थः। एतेन वीरस्य मुद्रारूपं प्रसाधितम्। (म० त० टी० ,पृ० ३४)

पिशुनम्

परप्रभेदकं वचनं पिशुनम्। (कृ० त० टी०, पृ० ७)

पिशुनो रत्नसंभवः। (कृ० त० टी०, पृ० ७)

---

१. का० त० ४.१२८

पीठानि

उक्तं च—

परपीठेति प्रज्ञोक्ता अध्यात्मपीठमुपायकम् ।
अनयोरद्वयीभावो योगपीठ इति स्मृतम् ॥
तत्त्वपीठं तदुत्पन्नं तद्रहितं च यद् भवेत् ।
सहजेति समाख्यातं वाक्पथातीतगोचरम् ॥

अन्यत्र च—

[१]पीठं स्त्रीगुह्यपद्मं प्रभवति समये वज्रमेवोपपीठम्
क्षेत्रं छन्दोहमेलापकचितिभुवनं तद्वदेवं समस्तम् ।
पीठं वामाङ्गपूर्वं ह्यपरमपि तथा दक्षिणं चोपपीठम्
एवं क्षेत्रादि सर्वं करचरणगताश्चाङ्गुलीजानुसीम्नः ॥

(अ० क०, पृ० ८४)

पुण्यपरिणामना

एतत्पूजादिना यन्मयेदं पुण्यमुपचितं तत्सर्वस्य जगतोऽर्थायानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिणामयामि। (कृ० त० टी०, पृ० १२३)

पुण्यम्

पुण्यं महाकरुणारागरञ्जिताचित्तचित्तेन समाध्यङ्गाभिमुखीकरणं सुखं [पुण्यम्]। ... उक्तं च—

न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन च्युतिसौख्यं विवर्जयेत् ॥

(अ० क०, पृ० ४३)

पुण्यसंभारः

महामुद्रासिद्ध्युपायसुखज्ञानत्वात् पुण्यसंभारः। उक्तं च—

---

१. का० त० ३.१६६

गिरीन्द्रमूर्ध्नः प्रपतेत् तु कश्चित्
नेच्छेच्च्युतिं स च्यवते तथापि ।
गुरुप्रसादाद्विहितोपदेशा-
न्नेच्छेद्विमुक्तिं स तथा विमुक्तः ॥ इति।

(अ० क०, पृ० ४३)

पुण्यानुमोदना

पुनर्मया जीवितस्यार्थेन न कर्तव्यमिति संवरं कृत्वा येन यावत् पुण्यं कृतं तदनुमोदे। (कृ० त० टी०, पृ० १२३)

पूजा (दशविधा)

एवं विण्मूत्रमज्जा पञ्चप्रदीपा अष्टसमयाः, द्वौ चन्द्रादित्यौ, एवं दशविधा पूजा पञ्चामृतैः पञ्चप्रदीपैर्भवति गणचक्र इति। (वि० प्र०, II.१२०)

पूजा (सप्तविधा)

एवं वन्दना, पूजना, पापदेशना, पुण्यानुमोदना, तथागतानामध्येषणा, याचना, पुण्यपरिणामनेति। (वि० प्र०, II.१५३)

पूजाद्रव्यम् (दशविधम्)

चक्रमेलापके अर्घादिकमुच्यते। ......तोयपात्रम् अर्घपात्रं गन्धपात्रं धूपपात्रं पुष्पपात्रं फलपात्रम् अक्षतपात्रं प्रदीपपात्रं नैवेद्यपात्रं वस्त्रपात्रम्— एवं दशविधं पूजाद्रव्यम्। गणचक्रमेलापके पूजार्थं मण्डलचक्रेऽपि तथा-ध्यात्मद्रव्यं दशविधं भवति— शुक्रं मूत्रं च मज्जा विट् पिशितं कालजं पित्तं रक्तम् अन्त्रं चर्माणि। भवति दशविधं चक्रमेलापके योगिनीनां पूजाकर्मार्थम्। (वि० प्र०, II.१२३)

प्रकृतिप्रभास्वराः

प्रकृतिर्निजः स्वभावः, तया प्रभास्वराः प्रभासनशीलाः, प्रकर्षेण निर्मला इत्यर्थः। ....यस्मादादिशुद्धास्तस्मात् प्रकृतिप्रभास्वरास्त्रिभिः कार्य-

(य)स्तस्मात् प्रकृतिप्रभास्वराः। ...प्रकृतिप्रभास्वरत्वं चित्तस्य बोधेर्हेतुः, बोधिः फलम्। स(सा) पुनर्बोधिः सवासनसर्वावरणक्षयादात्यन्तिकी चित्त-सन्तानस्य विशुद्धिः, सैव धर्मकायः। संभोगनिर्माणकायसंगृहीतानां धर्माणां कायो वास आश्रय इति कृत्वा। (म० त० टी०, पृ० ८-९)

प्रजापतिः

ज्ञानप्रबोधेन तुर्यातीतप्रभास्वरमयज्ञानबिम्बमयत्वेन सर्वजन्तूनामुत्पादनात् प्रजानां जन्तूनां पतिः प्रजापतिः। (अ० क०, पृ० ५६)

प्रज्ञा

प्रज्ञा सर्वधर्मा विकल्परूपा शून्यता। (अ० क०, पृ० ६)

प्रज्ञा विश्वबिम्बदर्शनलक्षणा। (अ० क०, पृ० ४१)

प्रज्ञा विश्वबिम्बः, सैव उत्पत्तिस्थानम्। (अ० क०, पृ० ४५)

वैमल्यगतमहामुद्रा प्रज्ञा। (अ० क०, पृ० ९१)

इह वज्रयाने लोकिकलौकोत्तरसत्यमाश्रित्य भगवता त्रिधा प्रज्ञा प्रोक्ता— कर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा, महामुद्रा इति, एकाभिधानतः। तासु कर्ममुद्रा-ज्ञानमुद्रासुखं स्पन्दलक्षणं महामुद्रासुखं निःस्पन्दलक्षणं योगिनो भवति।

(वि० प्र०, III.७९)

प्रज्ञाज्ञानम्

प्रज्ञाज्ञानं सहजचण्डालीज्ञानम्। (अ० क०, पृ० ४६)

प्रज्ञाधृक्

प्रकर्षकृतविज्ञानं यत् तत् प्रज्ञेति भण्यते ।
संस्कारचेतनाधार्यं प्रज्ञाधृगिति कथ्यते ॥

(गु० स०, १८.४३)

प्रज्ञान्तकृत्

अविज्ञानात्मका धर्माः परमार्थविशुद्धितः ।
समयः सर्वचित्तानां तेन प्रज्ञान्तकृज्जिनः ॥

(गु० स०, १८.५३)

दोषो दोषोपभोगेन क्षयदोषः प्रज्ञान्तकृत् ।
चित्तान्तकृद्भवेत्तेन तथा क्लेशान्तकृद्भवेत् ॥

(गु० स०, १८.५८)

प्रज्ञापारमितावज्रम्

प्रज्ञापारमितावज्रमिति। प्रविभक्तग्राह्यग्राहकभावेन ज्ञानं प्रज्ञा, तस्याः पारं सकलधर्मनैरात्म्यमद्वयविज्ञप्तिलक्षणं गता धीः प्रज्ञापारमिता, सैवाभेद्यत्वाद्वज्रं वज्रसरस्वतीमूर्तिः। (कृ० त० टी०, पृ० ५२)

प्रज्ञापारमितासमयानुस्मृतिभावना

प्रकृतिप्रभास्वराः सर्वे अनुत्पन्ना निराश्रवाः ।
न बोधिर्नाभिसमयो न वान्तं न च सम्भवः ॥

(गु० स०, ७.३४)

प्रज्ञोपायः

प्रज्ञा सर्वधर्माविकल्परूपा शून्यता। उक्तं चादिबुद्धे—

१त्यक्त्वेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां
सम्यक्संबोधिहेतोर्जिनवरजननीं भावयेद् दिव्यमुद्राम्।
निर्लेपां निर्विकारां खसमहततमां व्यापिनीं योगगम्यां
कूटस्थां ज्ञानतेजां भवकलुषहरामादिबुद्धानुविद्धाम्॥ इति।

सैव उपायः, तेन साधिता महाकरुणा महासुखरूपिणी बोधिचित्ततया स्फरणलक्षणं जगदर्थं कुर्वतीति। (अ० क०, पृ० ६)

---

१. का० त० ४.१९९

प्रतीच्छा

एवं सप्तत्रिंशत् प्रतीच्छाः, इच्छानां निवर्तनं प्रतीच्छा इत्युच्यते।

(वि० प्र०, II.१७४-१७५)

प्रत्यात्मवेद्यः

षष्ठो वज्रधरः कुमारीसुरतसुखवदनन्यवेद्यत्वात् प्रत्यात्मवेद्यः। उक्तं च—

वक्तुं न शक्यते सौख्यं कुमार्याः सुरतं विना ।
यौवने सुरतं प्राप्य स्वतो वेत्ति महासुखम् ॥

एवं न शक्यते वक्तुं समाधिरहितं सुखम् ।
समाधावक्षरं प्राप्तः स्वतो विन्दन्ति तत्सुखम् ॥

(अ० क०, पृ० ४४)

प्रत्याहारः

प्रत्याहारशब्देन त्रैधातुकबुद्धबिम्बदर्शनम्। कुण्डल्या सह योगतः। अत्रामृतकुण्डलीसंज्ञया सन्ध्याभाषान्ते वा स्वरित्युक्तो भगवता।

(डा० जा० सं० र०, पृ० ५)

उक्तं च—

प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे ॥ इति।

चक्षुरादीन्द्रियै रूपादिविषयग्रहणं संसारिणामाहारस्तत्परित्यागः प्रत्याहारः। शून्यतालम्बनैः मांसादिपञ्चचक्षुभिरन्यरूपादिग्रहणं धूमादिबिन्दुपर्यन्तं दर्शनभेदेनाकल्पितो ज्ञानस्कन्ध इति यावत्। (अ० क०, पृ० ३०-३१)

इह संसारिणामाहारश्चक्षुरादीन्द्रियै रूपादिविषयग्रहणम्, तत्परित्याग प्रत्याहार इत्युच्यते। (वि० प्र०, II.२०८)

इह प्रत्याहारो नाम शरीरे विषयविषयिणां दशानां सम्बन्धेनाप्रवृत्तिर्विज्ञानस्य शून्यबिम्बे, विषयेषु प्रवृत्तिरन्यैश्चक्षुरादिभिः पञ्चविधैरिति। तथा तस्मिन्नेव बिम्बे प्रज्ञेत्यालोकनम्। (वि० प्र०, II.२१०)

प्रत्येकनायकः

प्रत्येकं सकलनाडीनां महासुखताप्रापणात् प्रत्येकनायकः।
(अ० क०, पृ० ३९)

प्रमथः

महासुखशुक्रदान्तवशीकृतप्रादेशिकक्षणा[स्कन्धा]दिविघ्नगणत्वेन विघ्नाधिपत्वात् प्रमथः। (अ० क०, पृ० ९१)

प्रमथेश्वरः

कायवाक्चित्तमुक्तिरूपत्र्यम्बकस्वभावत्वात् प्रमथेश्वरः।
(अ० क०, पृ० ९१)

प्रह्वकायः

प्रह्वकायः सहजनिमग्नकायवाक्चित्तः। (अ० क०, पृ० १०)

प्राणायामः

वामदक्षिणदशमण्डलानामाकाशादीनां निरोधाद् ....स च खड्गी संस्कारस्कन्धः। अनेन प्राणायामाङ्गमुक्तम्। उक्तं च —

[१]प्राणायामो द्विमार्गः स्खलनमपि भवेद् मध्यमे प्राणवेशः ॥ इति।
(अ० क०, पृ० ३२)

प्राणायामो नाम ललनावामदक्षिणमार्गनिरोधः। अयमेव वसन्तकालः, अवधूतीमध्यमाङ्गे प्राणवायोः समप्रवृत्तिरिति। तत्रानिलयोगेनावधूत्यां संचार इति. तस्य ॐकारेण उच्चा(च्छ्वा)सः, आःकारेण निःश्वासः। ॐ हूँकारेण निरोधश्चन्द्ररविराहुस्वभावेन कुरुते योगी। इति प्राणायामाङ्गमुच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ६)

प्राणायाममिति उच्छ्वासनिःश्वासौ। (म० त० टी०, पृ० ३२)

---

१. का० त० ४.११६

इह प्राणायामो नाम द्विमार्ग इति वामदक्षिणमार्गः। स्खलनम् निरोधो मध्यमे मार्गे प्रवेशः, स च दशविधो दशमण्डलरोधतः। इह बिन्दाविति ललाटे प्राणप्रवेशः। उभयगतिहत इति गमनागमनरहितः।

(वि० प्र०, II.२१०)

प्राणायामानलम्

इह प्राणनिरोधेन या चण्डाली ज्वलिता, सा प्राणायामानल इत्युच्यते।

(वि० प्र०, II.२१५)

प्रातिहार्यम्

प्रति प्रति ह्रियन्ते आवर्ज्यन्तेऽनेन सत्त्वा इति प्रतिहार्यम्, स्वार्थेऽण् प्रातिहार्यम्। तच्च त्रिविधम्— ऋद्धिप्रातिहार्यम्, आदेशनाप्रातिहार्यम्, अनुशासनीप्रातिहार्यं च। (म० त० टी०, पृ० २३)

प्रीतिः

प्रीतिर्नाम सर्वभावेषु चित्तारोपणम्। (डा० जा० सं० र०, पृ० ६)

प्रेरणम्

प्रेरणं रश्मिसञ्चारणम् दशदिग्लोकधातुषु। (गु० स०, १८.१०८)

बन्धनम्

बन्धनमिति प्रविष्टस्य गमननिषेधः। (कृ० त० टी०, पृ० १९)

रश्मिना सर्ववज्राणां सर्ववज्राणि तत्पदे ।
संहृत्य पिण्डरूपेण बन्धो बन्धनमुच्यते ॥

(गु० स०, १८.१०९)

बिन्दुयोगः

प्रणिपत्याच्युतं सौख्यं षोडशार्धार्धबिन्दुधृक् ।
यस्तस्योपायः सम्यक् बिन्दुयोगः प्रकथ्यते ॥

...... बोधिचित्तबिन्दुनिष्पत्तिर्बिन्दुयोगः। ...मूलतन्त्रे भगवान् आह—

स्रवते बिन्दुरूपेण अमृतं शुक्ररूपिणम् ।
बिन्दुयोग इति ख्यातः षोडशार्धार्धबिन्दुधृक् ॥
(वि० प्र०, II.२०४-२०५)

बिन्दुशून्यः षडक्षरो धर्मोदयः

विज्ञानस्कन्धाकाशधातुश्रोत्रधर्मधातुभगशुक्रच्युतीनां निरावरणशून्यता पूर्वोक्ता, मध्यानाहतचिह्नस्योर्ध्वे कवर्गात्मकं ककारव्यञ्जनमनुच्चार्यं प्रथमं बिन्दुशून्यम्। संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणेन्द्रियस्पर्शवाग्विट्स्रावाणां निरावरणसर्वाकारशून्यता पूर्वोक्तचिह्नस्य पूर्वे चवर्गात्मकं चकारव्यञ्जन-मनुच्चार्यं [द्वितीयं] बिन्दुशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातुचक्षूरसपाणीन्द्रिय-गतीनां सर्वाकारनिरावरणशून्यता दक्षिणचिह्नस्य दक्षिणे टवर्गात्मकं टकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं तृतीयं बिन्दुशून्यम्। संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वारूप-पादेन्द्रियादानानां निरावरणशून्यता उत्तरचिह्नस्योत्तरे पवर्गात्मकं पकार-व्यञ्जनमनुच्चार्यं चतुर्थं बिन्दुशून्यम्। रूपस्कन्धपृथ्वीधातुकायेन्द्रियगन्ध-पाय्वालापानां निरावरणशून्यता पश्चिमचिह्नस्य पश्चिमे तवर्गात्मकं तकार-व्यञ्जनमनुच्चार्यं पञ्चमं बिन्दुशून्यम्। ज्ञानस्कन्धज्ञानधातुमनःशब्ददिव्येन्द्रिय-मूत्रस्रावाणां सर्वाकारनिरावरणशून्यता मध्यानाहतचिह्नस्याधस्तात् शव-र्गात्मकं शकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं षष्ठं बिन्दुशून्यमिति। एवं बिन्दुशून्यः षडक्षरो धर्मोदयः। (अ० क०, पृ० ८९)

बीजम्

अनाभोगेन सर्वसुखजननाद् बीजं धर्मधातुज्ञानम्। (अ० क०, पृ० ६९)

बीजाक्षरपदम्

बीजाक्षरपदं प्रोक्तं त्रिवज्राक्षरमक्षरम्। (गु० स०, १८.१०७)

बुद्धकामः

बुद्धैर्वा काम्यत इति बुद्धकामः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धकायः

विरमानन्दत्वेन धर्मकायत्वाद् बुद्धकायः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धनाटकः

सहजस्फुरत्स्थिरचलरूपत्वेन बुद्धनाटकः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धपद्मोद्भवः

बुद्धं निर्विकल्पज्ञानं तदेव क्लेशवासनामलाननुलिप्तत्वान्महासुखाकारत्वात् च पद्मं महामुद्रा, तत उद्भवतीति बुद्धपद्मोद्भवः। (अ० क०, पृ० ७४)

बुद्धपुत्रः

उक्तप्रभास्वरचित्तप्रबोधाद् बुद्धः, तस्य पुत्र आत्मजः सहजः परिदृष्टत्वेनात्यन्तप्रमाश्रयत्वात्। निर्विकल्पप्रतिवेधनियात् इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० ४५)

बुद्धपुत्रोऽप्यसावुच्यते। तत्कथम् ? कदाचिद् बोधिसत्त्वरूपत्वात्, बोधिसत्त्वानां बुद्धसुतत्वात्। (ख० त० टी०, २३३)

बुद्धप्रीतिः

शून्यतागर्भसहजानन्दक्षणत्वेन बुद्धप्रीतिः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धबोधिः

कायवाक्चित्तस्वरूपावबोधरूपत्वादद्वयश्रीरेव बुद्धबोधिः।

(अ० क०, पृ० ८८)

बुद्धभावः

धर्मकायाभिन्नसम्भोगत्वेन बुद्धभावः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धमोदः

द्वयप्रहाणेनाद्वयसुखप्रमोदलाभाद् बुद्धमोदः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धरागः

महारागरूपत्वाद् बुद्धरागः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धवाचः

कर्माङ्गनाद्वाराप्यवधूतीपदप्रापितप्राणादिवायुत्वेन अनाहतनादोल्लास-रूपत्वाद् बुद्धवाचः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धविद्याधरः

बुद्धविद्यां चतुर्बिन्दुलक्षणां धरतीति बुद्धविद्याधरः। (अ० क०, पृ० ७४)

बुद्धशासनम्

येन यानेन बुद्धो भवति तद् बुद्धशासनम्, महायानमित्यर्थः।
(म० त० टी०, पृ० १६)

बुद्धसंगीतिधर्मः

बुद्धसंगीतिस्त्रैधातुकव्यापी अनाहतध्वनिः, स एव धर्मः। (अ० क०, पृ० ७४)

बुद्धस्मितः

सुखमयज्ञानप्रकाशयोगाद् बुद्धस्मितः। (अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धस्वभावः

बुद्धश्चित्तबाह्यश्चित्तग्राह्यः, स स्वभावोऽस्येति। बुद्धस्वभावः खलु नैव संदृश्यते नोपलभ्यते न कल्प्यते, नापि विज्ञानस्य स्वभावभूत आकारः, एकानेकविचारासहत्वात्। (ख० त० टी०, २३४)

बुद्धहासः

सहजचण्डालीज्योतिषा सकलज्ञेयमण्डलव्यापनाद् बुद्धहासः।
(अ० क०, पृ० ९९)

बुद्धः

सहजज्ञानं बुद्धिस्तद्योगाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० २०)

महासुखप्रबोधाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० २८)
आत्मसुखाववबोधरूपत्वाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० ४४)
प्रभास्वरचित्तप्रबोधाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० ४५)

सर्वपदार्थानां समतयाऽवगमाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० ७०)

बुद्धैरिति सकलपुद्गलधर्मनैरात्म्यबोधाद् धर्मकायस्वभावैः।
(कृ० त० टी०, पृ० ५७)

बुद्धानुस्मृतिभावना

द्वयेन्द्रियसमापत्या बुद्धबिम्बं विभावयेत् ।
रोमकूपाग्रविवरे बुद्धमेघान् स्फरेद् बुधः ॥
(गु० स०, ७.२१)

बुद्धाः

बुद्धा अमोघसिद्धि-रत्नसंभव-अमिताभ-वैरोचनाः। (वि० प्र०, II.१९४)

बुद्धैर्वैरोचनादिभिश्चतुर्भिः। (वि० प्र०, II.१९९)

बोधिचित्तच्यवनम् (द्विधा)

इह सत्त्वानां बोधिचित्तच्यवनं द्विधा— एकं शुभाशुभकर्मवशात्, द्वितीयं चित्तवशितावशात्। तत्र यत् कर्मवशाच्च्यवनं तत् संसारभ्रमणार्थम्, यत् चित्तवशिता[वशा]च्च्यवनं तत्संसारचक्रे कर्मभ्रामितानां मार्गदर्शनार्थम्।
(वि० प्र०, III.९२)

बोधिचित्तम्

अनादिनिधनं शान्तं भावाभावक्षयं विभुम् ।
शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तमिति स्मृतम् ॥
(गु० स०, १८.३६)

जन्मबोधिबीजाच्छिरसि स्रवति यो हंकारो बिन्दुरूपं शुक्रमागन्तुकं स वज्री बोधिचित्तमित्यर्थः। शिरसः कण्ठे, कण्ठाद् हृदये, हृदयान्नाभौ, नाभेर्गुह्य-कमले। (वि० प्र०, II.२०६)

युवतिप्रसङ्गे ज्ञानसत्त्वः शुक्रं सन्ध्याभाषान्तरेण, तस्याकर्षणं प्राणादिवायु-वृन्दभेदं करोत्यूर्ध्वे शिरसि परिपूर्णं करोति बोधिचित्तमित्यर्थः।

(वि० प्र०, III.५१)

बोधिचित्तोत्पादः

अहो बताहमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ बोधिमभिसंबोध्य यः सर्वसत्त्वाना-मर्थाय हिताय यावदत्यन्तनिष्ठे निर्वाणधातौ बुद्धबोधौ प्रतिष्ठापनाय।

(कृ० त० टी०, पृ० १३५)

बोधिपाक्षिकधर्माः

सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मैर्योगिनीनां विशुद्धिरुच्यते — ... इह चतस्रो देव्यो यथाक्रमेण कायानुस्मृत्युपस्थानं लोचना, वेदनानुस्मृत्युपस्थानं पाण्डरा इति पश्चिमदक्षिणम्। चित्तानुस्मृत्युपस्थानं मामकी, धर्मानुस्मृत्युपस्थानं तारेति वामपूर्वं कायभेदेन पीठोपपीठद्वयमिति कालचक्रे प्रसिद्धम्। नान्यस्मिं-स्तन्त्रे प्रसिद्धम्, गोपितं भगवतेत्यर्थः। तथा सप्तबोध्यङ्गानां मध्ये एकं बोध्यङ्गं माता वज्रधात्वीश्वरी कुलपीठमुपेक्षासंबोध्यङ्गमिति. अपरमपि तथा शब्दवज्रादिषट्कमिति। स्मृतिसंबोध्यङ्गं शब्दवज्रा। धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्गं स्पर्शवज्रा। वीर्यसंबोध्यङ्गं रूपवज्रा। उपक्षेत्रं कायभेदात्। तथा प्रीति-संबोध्यङ्गं गन्धवज्रा। प्रश्रब्धिसंबोध्यङ्गं रसवज्रा। समाधिसंबोध्यङ्गं धर्म-धातुवज्रेति। क्षेत्रं द्विधा। तथाब्धिः सम्यक्प्रहाणानीति। अनुत्पन्नानां पापानामनुत्पादाय प्रहाणं चर्चिका। उत्पन्नानां पापानां प्रहाणं कुशलमूलं वैष्णवी. अनुत्पन्नानामकुशलानां प्रहाणं कुशलोत्पादनं माहेश्वरी। उत्पन्नाकुशलानां बुद्धत्वपरिणामनाप्रहाणं महालक्ष्मीः. उपच्छन्दोहा-श्चत्वारः। अपरज़लधयश्चतस्रो देव्यः ऋद्धिपादा भवन्ति। तत्र छन्द-ऋद्धिपादो ब्रह्माणी। वीर्यऋद्धिपाद ऐन्द्री। चित्तऋद्धिपादो वाराही।

मीमांसाऋद्धिपादः कौमारीति छन्दोहभेद इत्यष्टकं स्यात्। तथा पञ्चक्रोधबलानीति। इह श्रद्धाबलमतिनीला। वीर्यबलमतिबला। स्मृतिबलं वज्रशृङ्खला। समाधिबलं मानी। प्रज्ञाबलं चुन्देत्युपमेलापकम्। तथा प्रकटितनियतानीन्द्रियाण्येव पञ्चेति. तथा श्रद्धेन्द्रियं स्तम्भी। वीर्येन्द्रियं मारीची। स्मृतीन्द्रियं जम्भी। समाधीन्द्रियं भृकुटी। प्रज्ञेन्द्रियं रौद्राक्षीति मेलापकमेव दशकम्। सम्यक् चाष्टाङ्गमार्गो भवति नरपते चाष्टकं दैत्यजानामिति। इह सम्यक्दृष्टिः श्वानास्या। सम्यक्संकल्पः काकास्या। सम्यग्वाग् व्याघ्रास्या। सम्यक्कर्मान्त उलूकास्या। सम्यगाजीवो जम्बुकास्या। सम्यग्व्यायामो गरुडास्या। सम्यक्स्मृतिः शूकरास्या। सम्यक्समाधिः गृध्रास्येति। एवं सप्तत्रिंशत्प्रभेदैस्त्रिभुवननिलये बोधिपाक्षिका धर्मा ये। ......एवं सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मैर्विशोधितं पीठादिकं धर्मकायलक्षणं भवति।

(वि० प्र०, १२९-१३०)

बोधिसत्त्वकुलानि

विष्कम्भि-क्षितिगर्भ-लोकेश्वर-खगर्भ एतानि बोधिसत्त्वकुलानि। ..... गन्धवज्रा-रसवज्रा-रूपवज्रा-स्पर्शवज्रा-बोधिसत्त्वकुलानि।

(वि० प्र०, II.२२२)

बोधिसत्त्वचर्या

संवृतिर्महायानं परमार्थे वज्रयानम्। चर्याविरोधबोधरूपत्वाद् बोधिसत्त्वचर्या। (अ० क०, पृ० १०६)

बोधिसत्त्वः

सर्वधर्मानासक्तमहायानार्थावबोधाद् बोधिसत्त्वः। (अ० क०, पृ० ९२)

बोधिः

तेन तस्य न पापं स्यात् पुण्यं नैव तथैव च ।
यस्य न पुण्यं पापोऽस्ति तस्य बोधिः प्रगीयते ॥

(गु० स०, १८.१९८)

तथा चोक्तमार्यवसुबन्धुपादैः—

आवरणपरिच्छेदो हि बोधिः । (डा० जा० सं० र०, पृ० ८)

ब्रह्म

प्रकृतिप्रभास्वरशून्यताकरुणाभिन्नज्ञानं ब्रह्म। (अ० क०, पृ० ६७)

ब्रह्मचर्यम्

बाह्ये पुनः पञ्चतथागतकुलनारीणां ग्रहणं नारीचर्या, तासु नारीचर्यासु मन्थानं ब्रह्मचर्यम्। (वि० प्र०, II.२१६)

ब्रह्मचारी

अच्युतबोधिचित्तत्वादेव ब्रह्मचारी। (अ० क०, पृ० ६७)

ब्रह्मा

आकाशासक्तचित्ततया प्रत्याहारादिषडङ्गसंक्षेपचतुरङ्गब्रह्मविहारचतुर्ध्यान-चतुर्मुखस्वभावत्वाद् ब्रह्मा। (अ० क०, पृ० ६७)

"ब्रह्मा निवर्ति[र्वृति]तो बुद्धः[१]"। धात्वाश्रावत्वात् स्वशरीरे क्षयाद् बाह्ये निर्गमाभावाद् ब्रह्मा वैरोचनो बुद्धो भण्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ५)

ब्रह्माण्डम्

"बृह बृहि वृद्धौ" (७३५-७३६ भ्वा०), मनिन्। नैरुक्तो वर्णविकारः। एवं ब्रह्मेति भवति। इह तु सर्वलोकगुरुत्वात् सर्वतो वृद्धा इति ब्रह्माण-स्तथागताः संभोगनिर्माणकायसंगृहीताः। तेषामण्डमुत्पत्तिस्थानम्, धर्मकाय इत्यर्थः। अथवा मोक्षातिशयत्वाद् ब्रह्म च तत् कायद्वयोत्पत्तिस्थानत्वा-दण्डश्चेति ब्रह्माण्डं धर्मकाय इत्यर्थः। (म० त० टी०, पृ० ४)

---

१. हे० त० १.५.१३

ब्राह्मणः

पञ्चाक्षररूपत्वाद् हंकारः पञ्चतथागतात्मको ब्राह्मणः, तन्नादमागम्य यावद् उष्णीषलयेन सर्वविकल्पवातं वाहयतीति ब्राह्मणः। (अ० क०, पृ० ६७)

भगवान्

भगोऽत्र ललाटचक्रमध्याद् गुह्यवरटकगतो ज्ञानबिन्दुः, तदुदितप्रभास्वरज्ञानं भगवन्तम्। (अ० क०, पृ० ७)

भगः सर्वाकारनिराकारशून्यता, तद्योगाद् भगवान्। (अ० क०, पृ० ७)

महामुद्राऽद्वैधरूपत्वाद् भगवान्। (अ० क०, पृ० २०)

भगो महामुद्रा महाप्रज्ञा, तद्योगाद् भगवान्। उक्तं च श्रीहेवज्रे—

[१]भञ्जनं भगमाख्यातं क्लेशमारादिभञ्जनात् ।
प्रज्ञाबध्याश्च ते क्लेशास्तस्मात् प्रज्ञा भगोच्यते ॥

(अ० क०, पृ० ११)

भगवानिति—

भञ्जनं भगमाख्यातं चतुर्मारारिभञ्जनात् ।
प्रज्ञाबध्याश्च ते क्लेशास्तस्मात् प्रज्ञा भगोच्यते ॥

इति वचनान्निराभासप्रकाशमहासुखस्वभावज्ञानं भगः, तद्वान् धर्मकायः। तन्निष्पाद्य तद्देवताचक्रेन्द्रो यस्याः सा, वज्रसत्त्वमूर्तिभिरित्यर्थः।

(कृ० त० टी०, पृ० २)

इमां महामुद्रां यः कश्चिद् जन्मान्तरपुण्यवासनावशात् सद्गुरूपदेशादनेक-कालं रात्रिन्दिवं सर्वधर्मकल्पनारहितां स्वचित्तप्रतिभासमात्रां सर्वाकार-वरोपेतां महाशून्यतां सहजानन्दजननीं साक्षात्कृत्वाऽऽलिङ्गयति, स महा-मुद्रासिद्धिं प्राप्तः सर्वज्ञो भगवानित्युच्यते। (वि० प्र०, III.७५)

---

१. यह श्लोक वहाँ उपलब्ध नहीं होता । 'भगोऽस्यास्तीति' (हे० त० १.५.१५) इत्यादि वचन वहाँ मिलता है ।

भयनाशनः

सर्वाकारवरोपेतशून्यता(तया) सर्वप्रपञ्चभयविदारणान्निःशेषभयनाशनः।
(अ० क०, पृ० ६६)

भयानि (षोडश)

शत्रुभयं सिंहभयं गजभयं वह्निभयम् उरगभयं तस्करभयं पाशबन्धभयं क्षुब्धसमुद्रभयं पिशाचभयं व्याधिभयम् इन्द्रोपद्रवभयं दारिद्र्यदुःखभयं स्त्रीवियोगदुःखभयं क्षुभितनृपभयं वज्रपातभयम् अर्थनाशभयम्। एवं षोडशभयानि। (वि० प्र०, II.१४७)

भवचक्रम्

क्लेशकर्मदुःखेषु यथाक्रमेणाविद्यादीन्यङ्गानि त्रिषु संगृहीतानि। ततः क्लेशात् कर्म भवति, कर्मणो दुःखं भवति, दुःखात् पुनः क्लेशो भवति। एतदेव भवचक्रं हेतुः फलं च सर्वं जगत्। (वि० प्र०, III.९७)

भवपञ्जरः

भवः कायवाक्चित्तस्वरूपापरिज्ञानम्, स एव पञ्जरोऽनिर्गमहेतुत्वात्।
(अ० क०, पृ० ५७-५८)

भवः

भवो रागादिक्लेशः। (अ० क०, पृ० २७)

भवान्तकृत्

भवस्यान्तमवसानमानन्दत्रयावसानं सहजानन्दं करोतीति भवान्तकृत्।
(अ० क०, पृ० ४५)

भास्करद्युतिः

भाभिर्भास्करा द्युतिः पुञ्जरूपा यमान्तकादिक्रोधाः, तत्स्फरणरूपा द्युतिस्तत् क्रोधविनयसत्त्वार्थं यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० ७१)

भाः (देवी)

पत्युरङ्कगतत्वान्नित्यं भासत इति भाः। चतुर्देवीसंग्रहरूपत्वाद्वाऽत्यर्थं भासत इति भाः। (ख० त० टी०, २४०)

इन्द्रनीलनिभो जटामुकुटी नवयौवनो विचित्रवस्त्राभरणो वज्रपर्यङ्कनिषण्णः स्वाभभादेवीमुभाभ्यां भुजाभ्यां विश्ववज्रविश्ववज्राङ्कघण्टाधराभ्यां परिष्वज्य व्यवस्थितो वीरशृंगाररसः। (ख० त० टी०, २४५)

भिक्षुः

पञ्चकामोपभोगेनापि भिन्नक्लेशत्वाद् भिक्षुः। (अ० क०, पृ० ४०)

भिक्षूणां द्वादशधूतगुणाः

अत्र भिक्षूणां द्वादशधूतगुणाः—पैण्डपातिक-त्रैचीवरिक-पश्चात्खलुभक्तिक-नैषद्यिक-यथासंस्तरिक-एकासनिक-अभ्यवकाशिक-वृक्षमूलिक-आरण्य-वासिक-श्मशानिक-पांशुकुलिक-नामन्तिकाश्चेति। (वि० प्र०, III.१५०)

भूतकोटिः

भूतं यथाभूतज्ञानम्, तदनुभवस्थानस्य मणिवरटकस्य कोटिः शिखरम्।

(अ० क०, पृ० ३७)

भूतवादी

भूतमविपरीतसुखं वदितुं साक्षात्कर्तुं तद्रूपेण प्रकाशयितुं शीलमस्य स तथा। (अ० क०, पृ० ३७)

भूतान्तमुनिः

भूतं सत्यं तथता, तस्यान्तः प्रकर्षः फलावस्था, तस्य यथावन्मननाद् भूतान्तमुनिः। (अ० क०, पृ० ७७)

भूतिः

अविच्छिन्नसुखत्वाद् भूतिः। (अ० क०, पृ० ६६)

भूमिलाभः

अवस्थान्तरं नाम भूमिलाभः। अत्र द्विधा भूमिः— वीतरागभूमिः, सम्यक्-संबुद्धभूमिरिति। ..इह प्रथमभूमिलाभादेकलोकधातुपर्यन्तमदृष्टार्थसंदर्शनम्, द्वितीयभूमिलाभाद् दशदिग्द्वितीयलोकधातुपर्यन्तम्, तृतीयभूमिलाभाद् दश-दिक्चतुर्थलोकधातुपर्यन्तम्, चतुर्थभूमिलाभाद्दशदिगष्टलोकधातुपर्यन्तम्, पञ्चमीभूमिलाभाद्दशदिक्षोडशलोकधातुपर्यन्तम्, षष्ठीभूमिलाभाद् दशदिग्-द्वात्रिंशल्लोकधातुपर्यन्तम्, सप्तमीभूमिलाभाद्दशदिक्चतुःषष्टिलोकधातुपर्यन्तम्, अष्टमीभूमिलाभाद् दशदिगष्टाविंशदधिकशतलोकधातुपर्यन्तम्, नवमीभूमि-लाभाद्दशदिक्षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयलोकधातुपर्यन्तम्, दशमीभूमिलाभा-द्दशदिग्द्वादशाधिकपञ्चशतलोकधातुपर्यन्तम्, एकादशभूमिलाभाद्दशदिक्चतु-र्विंशत्यधिकसहस्रलोकधातुपर्यन्तं परोक्षार्थसंदर्शनमिति। एवं द्विसाहस्र-त्रिसाहस्रलोकधातवः संख्यालक्षणाः। एकसाहस्रं नाम सहालोकधातु-र्मध्यत ऊर्ध्वाध एकैकं सहस्रम्, अध ऊर्ध्वे पूर्वापरं वामदक्षिणं नैर्ऋत्येशानं वायव्याग्नेयमिति। एवं द्वित्रिसाहस्रमिति। ततो महासाहस्रं नाम महा-संख्येयलोकधातवः। तेष्वदृष्टार्थसंदर्शनं द्वादशभूमिलाभात् सम्यक्संबुद्धस्य भवति, न वीतरागाणाम्। (वि० प्र०, III.९३-९४)

भ्रान्तिवज्रः

स्वप्नोपमेषु धर्मेषु अनुत्पादस्वभाविषु ।
स्वभावशुद्धतत्त्वेषु भ्रान्तिवज्रः प्रगीयते ॥

(गु० स०, १५.११९)

मज्जनम्

इह ग्राह्यचित्ते ग्राहकचित्तस्य यस्तस्मिन् प्रवेशो बाह्यविषयेष्वप्रवृत्तिः, प्रत्याहारो ध्यानं प्राणायामो धारणा मज्जनमित्युच्यते। (वि० प्र०, III.५३)

मञ्जुघोषः

सर्वचक्रेष्वागतबिन्दुप्राणसंमिश्रज्ञानविज्ञानैकलोलीभूतनादत्वाद् मञ्जुघोषो मञ्जुश्रीः। (अ० क०, पृ० ५३)

मञ्जुश्रीः

सर्वधर्माद्वयात्मकत्वान्मञ्जुश्रीरद्वयश्रीः। (अ० क०, पृ० ९६)

मण्डलम्

भगं मण्डलमाख्यातं बोधिचित्तं च मण्डलकम् ।
देहं मण्डलमित्युक्तं त्रिषु मण्डलकल्पना ॥

(गु० स०, १८.९९)

मण्डलराजाग्री

इह सर्वोत्पत्तिक्रमे कायनिष्पत्तिर्मण्डलराजाग्री। (वि० प्र०, II.२०४)

मण्डलानुस्मृतिभावना

द्वयेन्द्रियसमापत्त्या स्वरेतस्तु विचक्षणः ।
निःसारयेत् सदा योगी मण्डलान् मण्डलाकरान् ॥

(गु० स०, ७.२७)

मण्यन्तर्गतम्

वज्रस्य मणौ मध्ये चतुर्बिन्द्वात्मकं चित्तवज्रं यदा भवति, तदा वज्रपर्यङ्कतश्चित्तं मण्यन्तर्गतमित्युच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ३)

मदः

उत्कर्षचेतसः पर्यादानं मदः। (अ० क०, पृ० १०६)

मद्यम्

वज्रोदकं मद्यम्। .... वज्रोदकं हि बोधिचित्तम्। स एव धर्मः, आर्यमार्गत्वात्। स एव संघः, सवीर्यपुद्गलसंग्राहकत्वात्। (ख० त० टी०, २५१)
मद्यमिति मद्याकर्षणम्। (म० त० टी०, पृ० २२)

मध्यमकधीः

मध्यमकधीर्मध्यमा प्रतिपदेव बोधिमार्ग इति सिद्धम्। सर्वमहायानिकानां

भावाभावादिरूपयोरन्तयोरप्रतिष्ठिता धीर्मध्यमकधीः। सा धीर्न सत्या न चासत्या न च तदुभयी नाप्यनुभयी, चतुष्कोटिविनिर्मुक्तस्वभावविषयाकारेण चतुष्कोटिविनिर्मुक्तस्वभावत्वात्। ..... भवनिर्वाणयोरप्रतिष्ठितं मध्यमकधीः, तदेव भगवती शाश्वतोच्छेदवर्जिता या अवधूतीत्युच्यते। आदिस्वरस्वरूपा सैव धीः, अनुत्पादस्वभावस्य त्रैधातुकस्य समरसीभावेनाधिगमात्। सा भगवती चतुष्कोटिमुक्ता पूर्ववद् भावाभावयोरन्तयोरप्रतिष्ठानात्। सा सर्वाकृतिवरमयी, सर्वेषामाकृतिवराणां चतुष्कोटिमुक्तस्कन्धधात्वायतन-स्वभावचतुर्देव्यादीनां स्फरणात्। (अ० क०, पृ० १७)

मध्यमानन्दः

मध्यमानन्दमात्रं मध्यमम्, सुखसामान्यरूपत्वात्। ...मध्यमामध्यमसुखमात्रं प्रथमानन्दः। (अ० क०, पृ० ६१)

मननम्

प्रतीत्योत्पद्यते यद्यदिन्द्रियैर्विषयैर्मनः ।
तन्मनो मननं ख्यातं कारकत्राणनार्थतः ॥
(गु० स०, १८.६९-७०)

मनोजवः

महासुखोल्लासेन त्रैधातुकाक्रमणवेगो मनोजवः, तद्योगान्मनोजवः।
(अ० क०, पृ० ३८)

मन्त्रचर्या

पालनं सर्ववज्रैस्तु मन्त्रचर्येति कथ्यते ।
स्वकस्वकस्वभावं तु विचार्य मनसा हृदि ॥
(गु० स० १८.७१)

मन्त्रजापः

इह मन्त्रजापो नाम प्राणसंयमः। ...... रेचकपूरककुम्भकयोगः सदा सेवा, तया देवता वरदा भवन्ति, न प्राणेनायन्त्रितेन वाग्जल्पितेनेति नीतार्थः। नेयार्थेन पुनरक्षसूत्रादिना जापादिकं कर्तव्यं सामान्यसिद्ध्यर्थम्।
(वि० प्र०, II.२०८)

मन्त्रम्

मन[स]स्त्राणभूतत्वान्मन्त्रं सुखमुदाहृतमिति। (अ० क०, पृ० ३४)

शान्तिकादिपौष्टिकादिप्रत्याहारलक्षणो लौकिको मन्त्रः। परमाक्षरयोगेन बिन्दुनादात्मको लोकोत्तरो मन्त्रः। ...उक्तं च मूलतन्त्रे—

कायवाक्चित्तधातूनां त्राणभूतो यतस्ततः ।
मन्त्रार्थो मन्त्रशब्देन शून्यताज्ञानमक्षरम् ॥
पुण्यज्ञानमयो मन्त्रः शून्यताकरुणात्मकः ॥ इति।

(अ० क०, पृ० ८८)

........................सर्ववाङ् मन्त्रमुच्यते ।
मन्त्रं मन्त्रमिति प्रोक्तं .... ॥

(गु० स०,१८.७४)

मन्त्रयानम्

गम्भीरमहायाने, मन्त्रयान इत्यर्थः। पारमितानयविलक्षणो हि मन्त्रनये बोधिचित्तस्य मुद्राकारः परिच्छेदश्च क्षिप्रतरं बोधिसाधनो भाव्यते।

(म० त० टी०, पृ० १६)

मन्त्रविद्याधरः

मन्त्रविद्याधरकुलं निःस्पन्दानन्दशुक्ररूपवज्रधारणादक्षोभ्यो वज्रविज्ञान-स्वभावः। मणिवरटकान्तर्वर्ती वज्रकमलकर्णिकागूढगोचर इत्यर्थः. मन्त्र-दीपनं सहजालोककारकम्। 'मत्रि गुप्तभाषणे' इत्यपि पाठः। अत एव सकलमण्डलचक्रवर्तिरूपं स्फरणेन धारयतीति मन्त्रविद्याधरः।

(अ० क०, पृ० १४)

महर्द्धिकः

महासुखेन लौकिकलोकोत्तरपुण्यज्ञानसंभारपूरणाद् महर्द्धिकः।

(अ० क०, पृ० २६)

महाऋद्धिः

समाध्यङ्गस्फुटीभावेन सहजानन्दबोधिचित्तरसेन षट्शताधिकैकविंशति-सहस्रश्वासव्यापनाद् महाऋद्धिबलोपेतः। (अ० क०, पृ० २६)

महाऋषिः

परमाक्षरज्ञानत्वाद् महाऋषिः। (अ० क०, पृ० ४७)

महाकरुणा

महाकरुणा महासुखरूपि[णी] बोधिचित्ततया स्फरणलक्षणं जगदर्थं कुर्वतीति। (अ० क०, पृ० ६)

सर्वदुःखापनयनां महाकरुणाम्। (कृ० त० टी०, पृ० १३५-१३६)

महाकामः

सहजकायाभिलाषप्रकर्षपर्यन्ततया ऊर्णाब्जे केषाञ्चिन्मते मणिमूले महा-कामः, कायानन्द इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २२)

महाकारुणिकः

नित्यानवरतस्वायत्तमहासुखत्वेन जगद्दुःखवियोगसम्पादनान्महाकारुणिकः।
(अ० क०, पृ० २६)

महाकृतिः

महाकृतिर्दशकामावस्थाज्ञानी। दशकामावस्थाश्च दशधूमादिनिमित्तानि प्रत्याहाराङ्गरूपाणि। तथा चोक्तं श्रीकालचक्रे—

१ चिन्ताकाङ्क्षा ज्वरोऽङ्गे वरसुखकमले शुक्तिरन्यप्रवृत्तिः
कम्पोन्मादश्च घूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा ।

---

१. का० त० ४.१२६

धूमाद्या वज्रिणस्ताः प्रकटदशविधाः प्राणिनोऽङ्गेष्ववस्था
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियताः को जिनः कश्च कामः ॥
(अ० क०, पृ० २६)

महाक्रूरः

क्रूरो(रा) दुर्दमत्वात् प्राणापानवायवः, तदतिक्रमाद् महाक्रूरः।
(अ० क०, पृ० २७)

महाक्रोधः

महाक्रोधः सर्वविकल्पक्लेशशातनात्। क्रोधातिक्रान्तत्वान्महाक्रोधो विरमानन्दनिरोधः सहजानन्दः। (अ० क०, पृ० २१)

महाक्लेशाः

महाक्लेशाः प्राकृतरागादयः। (अ० क०, पृ० २३)

महाक्षान्तिः

बाह्यशब्दाद्यनभिनिवेशो महाक्षान्तिः। (अ० क०, पृ० २५)

महाज्योतिः

सर्वधर्माणां निरोधोत्पन्ननिर्मलप्रकृतिज्योतीरूपत्वाद् महाज्योतिः।
(अ० क०, पृ० २३)

महातन्त्रम्

तन्यते व्युत्पाद्यत इति तन्त्रम्, महच्च तत्तन्त्रं चेति महातन्त्रं महासुख-ज्ञानमित्यर्थः। उक्तं च—

तन्त्रं प्रबन्धमाख्यातं संसारं तन्त्रमिष्यते ।
तन्त्रं गुह्यं रहस्याख्यमुत्तरं तन्त्रमुच्यते ॥
(अं० क०, पृ० ९)

महातपः

नित्यकमलकुलिशसंयोगाभ्यासेन बिन्दुमध्ये षट्श्वासलयीकरणेन तस्य बिन्दोः कुलिशमुखे भक्षणलक्षणं महातपः। (अ० क०, पृ० ६७)

महादानम्

महादानं सकलबाह्याध्यात्मिकवस्तुपरित्यागः, विकल्पप्रपञ्चमनोवर्जनं च।
(अ० क०, पृ० २५)

महाद्युतिः

ग्राह्यग्राहकप्रपञ्चरहितसुखानुभवद्योतनान्महाद्युतिः। (अ० क०, पृ० २३)

महाध्यानसमाधिः

सहजसुखगतं चित्तं महाध्यानम्, तदेव समाधिर्बहिर्विक्षेपाभावात्।
(अ० क०, पृ० २५)

महानयः

महानयो निरालम्बनिराभासधूमादिप्रतिभासो यस्य स तथा।
(अ० क०, पृ० ३९)

महापाशः

पाशशब्देन नाभ्यधः कुण्डलाकारेण स्थितो नागाकृतिर्वासुकिनामा नाडी-विशेषः। तेनावधूतीमार्गेण ब्रह्मस्थानं गत्वा बोधिचित्ताकर्षणेन स्कन्ध-धात्वायतनानां व्यापनान्महापाशः। (अ० क०, पृ० ४८)

महापुरुषसमयः

संभोगात्मकोदारकायत्वेन महान्, ''आधृ(ध्रि)येत्(त) पुरं यस्मात् पुरुष-स्तेनाभिधीयते'' इति पुरुषः, पुरं तु मण्डलचक्रम्, तस्य समयं स्फरणं यस्मादसौ महापुरुषसमयः श्रीवज्रसत्त्वः। (कृ० त० टी०, पृ० ७८)

महाप्रज्ञा

महाप्रज्ञा अनाहतसर्वत्रगा सर्वभावा। (अ० क०, पृ० २५)

महाप्रज्ञायुधम्

महाप्रज्ञा शून्यता धर्मधातुलक्षणा, तस्या आयुधं कायविरमानन्दं मणिशिखरान्ते नाभ्यब्जे वा। (अ० क०, पृ० २३)

महाप्राज्ञः

प्रज्ञा महामुद्रा, स(सा) तादात्म्येन विद्यते यस्य स प्राज्ञः, महांश्चासौ प्राज्ञश्चेति महाप्राज्ञः, युगनद्धहृदिस्थ इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २६)

महाप्राणः

प्रभास्वरस्फरणेन प्रकृतिधर्मेण वामदक्षिणनासारन्ध्रयोर्दशमण्डलसञ्चाराभावेन अवधूतीगतप्राणत्वात् महाप्राणः। वज्रधरप्रतिबिम्बकायो मायोपमदेह इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २०)

महाबलपराक्रमः

पञ्चानन्तर्यादिपापकर्मणामपि महासुखैकनिष्ठीकरणात् महाबलपराक्रमः। उक्तं च—

चण्डालवेणुकाराद्याः पञ्चानन्तर्यकारिणः ।
जन्मनीहैव बुद्धाः स्युर्मन्त्रयानानुचारिणः ॥

(अ० क०, पृ० २७)

महाबलम्

शून्यताकरुणाभिन्नं भवनिधनज्ञानबलमद्वयं महद् यस्य स तथा।

(अ० क०, पृ० २५)

महाबलं सकलविकल्पवायूनां निराभासीकरणसामर्थ्यमुक्तम्।

(अ० क०, पृ० १२)

चतुरङ्गषडङ्गबलविजयित्वान्महाबलः। (अ० क०, पृ० ३८)

महाबिन्दुः

अ क च ट त प य श क्ष ओं (ह)काराकारेण सह दशवर्गदशप्राणादिवायूनां मध्यमाप्रवाहत्वेन एकलोलीभूय सर्वशरीरेषु लीनत्वान्महाबिन्दुर्भगवान्। (अ० क०, पृ० ८८)

महाबिन्दुरिति सचराचरद्योतकनीलवर्णचन्द्रमण्डलाकाराभासः।
(अ० क०, पृ० ३४)

महामन्त्रनयम्

रेचकपूरककुम्भकाक्षरत्वेन स्वसंवेद्यत्वान्महामन्त्रनयम्।
(अ० क० पृ० ८८)

महामन्त्रम्

महामन्त्रं महासुखज्ञानम्। (अ० क०, पृ० २७)

मनसस्त्राणभूतत्वान्मन्त्रं सुखमुदाहृतमिति महामन्त्रं महासुखज्ञानमेव।
(अ० क०, पृ० २८)

महामहः

महेति प्रज्ञा महामुद्रा, सा महती यस्य स तथा। महान् रागोऽनालम्बकरुणात्मको यस्य स तथा। ...... अथवा महान् लोकातिक्रान्तो मह उत्सवः सहजोल्लासो यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० २१)

महामाया

रागविरागाभावेन महारागरूपा महामाया दिव्यमुद्रा। (अ० क०, पृ० २३)

महामायाशब्देन भगवतो वज्रधरस्य परमरहस्या मूर्तिर्भगवान् हेरुक उक्तः।
(म० त० टी०, पृ० ५)

हेरुकरूपा महामाया। (म० त० टी०, पृ० ६)

योगमातेति महामाया। (म० त० टी०, पृ० १०)

मायेति महामाया। (म० त० टी०, पृ० १२)

मण्डलाधिपतिः श्रीहेरुको महामाया, तद्विद्यापि बुद्धडाकिनी महामाया, तयोरेकस्वभावत्वात्। (म० त० टी०, पृ० २०)

महामायार्थसाधकः

महामाया महामुद्रा, तस्याः स्फरणेन जगदर्थसम्पादनाद् महामायार्थसाधकः। (अ० क०, पृ० २३)

महामायेन्द्रजालिकः

महामायया बुद्धनिर्माणमायया ऐन्द्रजालिकः परममायावी षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासानां परमाक्षरत्वप्रापणेन प्रतिचक्रं भूमिद्वयं प्रतिलम्भक्रमेण वज्रमणिशिखरात् प्रत्यावृत्त्या उष्णीषचक्रवरटकस्थायी महामायेन्द्रजालिकः, मणिवरटकान्तरुष्णीषस्थानाद्वयस्थितत्वात्।

(अ० क०, पृ० २३-२४)

महामुदिता

दिव्यसुखवियोगनियमाकारां महामुदिताम्। (कृ० त० टी०, पृ० १३६)

महामुद्रा

महामुद्रा सर्वधर्मनिःस्वभावलक्षणा सर्वाकारवरोपेता प्रज्ञापारमिता बुद्धजननी, धर्मोदयशब्देनापि सा उच्यते। तस्माद् धर्मोदयात् सर्वधर्माणां निःस्वभावेन उदयो भवति। निःस्वभावा धर्मा दशबलवैशारद्यादयश्चतुरशीतिसहस्रधर्मस्कन्धाः, तेषामुदयभूतो धर्मोदयो बुद्धक्षेत्रं बुद्धबोधिसत्त्वानां निवासो रतिस्थानं जन्मस्थानं च, न पुनर्यस्माद् रक्तमूत्रशुक्राणामुदयः स धर्मोदय इति। (वि० प्र०, III.७५)

महामुद्राकुलम्

महामुद्राकुलममोघसिद्धिर्ललाटचक्रे स्थितः स्वसंवेद्यस्वभावो वज्रसंस्कारस्वभावः। (अ० क०, पृ० १४)

महामुनिः

महासुखस्वरूपस्यं यथावन्मननान्महामुनिः। (अ० क०, पृ० २८)

महामूत्रम्

महामूत्रं नृमूत्रम्। (कृ० त० टी०, पृ० ७६)

महामैत्री

सकलज्ञेयमण्डलमहासुखाकारतया लोकोत्तरसुखसंयुक्तजगत्स्फरणान्महामैत्री। (अ० क०, पृ० २६)

सर्वसत्त्वेषु दिव्यसुखोपसंहाराकारां महामैत्रीम्। (कृ० त० टी०, पृ० १३५)

महामोहा

मोहातिक्रान्तत्वाद् महामोहा। (अ० क०, पृ० २१)

महामौनी

अवाच्यसुखात्मकत्वेन कायवाक्चित्तमौनयोगान्महामौनी। (अ० क०, पृ० २८)

महायाननयः

महायानं महासुखज्ञानं नीयते प्राप्यतेऽनेनेति महायाननयः। (अ० क०, पृ० २७)

महायोगः

दिव्यचक्ष्वाद्यधिष्ठानं कायवाक्चित्तमेव च ॥
ज्ञानचक्रप्रवेशश्च अमृतास्वाद एव च ।
महापूजा स्तुतिश्चापि महायोग इति स्मृतः ॥
(कृ० त० टी०, पृ० १२९)

महारतिः

महती रतिरस्यासौ महारतिः। तथैव तत्रैव सहजज्ञानाभिलाषतया ज्ञानानन्द इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २२)

महारागः

महारागः परमाक्षरसुखपूर्णत्वाद् भूमिपूरितत्वाच्च वज्रानङ्गो वज्रसत्त्व इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २१)

महारिपुः

सर्वक्लेशानां षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासप्रश्वासानां महारिपुर्हन्ता महासुखवेदकत्वेनाचल इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २१)

महारौद्रः

परमाक्षरमहारसविद्धसर्वश्वासत्वाद् विषयेन्द्रियादीनां संसारदुःखदायकत्व-रूपसंहारेण महासुखैकलयान्महारौद्रः। (अ० क०, पृ० २७)

महालोभः

च्यवनलोभातिक्रमान्महामहमहालोभः, परमाक्षरसुखोपायेन सत्त्वार्था-परित्यागात्। (अ० क०, पृ० २१)

महावज्रधरः

आलोक-आलोकाभास-आलोकोपलब्धिलक्षणं निराभासलक्षणं महावज्रं धरतीति स तथा। (अ० क०, पृ० २७)

महावज्रसत्त्वः

महावज्रसत्त्वमिति सर्वसंग्राहकत्वाद् महान्, बोधिचित्तरूपत्वाद्वज्रम्, तदुक्तम्— "यद् बोधिस्तद् वज्रम्" [इति], तत्र सत्त्वं विद्यमानत्वं तत्स्वभावत्वं यस्य सः। (कृ० त० टी, पृ० १२)

महावज्रामृतम्

महावज्रामृतं बोधिचित्तम्। (कृ० त० टी०, पृ० ७६)

महाविकल्पमारणवज्रः

महांश्चासौ विकल्पश्च दुःखदुर्गत्यादिरूपः, तस्य यन्मारणं स्फोटनम्, तदर्थं वज्र इव वज्रो महाविकल्पमारणवज्रः। (कृ० त० टी०, पृ० ३६)

महाविद्योत्तमः

महाविद्या महामुद्रा, तया उत्तमः, नित्यानुगतत्वात्। (अ० क०, पृ० २७)

महाविपुलमण्डलः

विस्तीर्णं मण्डं सुखं सारं लातीति महाविपुलमण्डलः।
(अ० क०, पृ० २२)

महावीर्यम्

वामदक्षिणनासापुटदशमण्डलभङ्गेन श्वासवातस्यावधूतीप्रवेशो महावीर्यम्।
(अ० क०, पृ० २५)

महावेगः

महावेगोऽच्युतबोधिचित्तत्वेन सर्वनाडीषु संक्रमात्। (अ० क०, पृ० २६)

महावैरोचनः

महावैरोचनशब्देन प्रकृतिप्रभास्वरं ज्ञानं तन्महच्चास्य स तथोक्तः, ज्ञानमय-काय इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २८)

महाव्रतम्

स्कन्धधात्विन्द्रियादिनिःस्वभावीकरणं महाव्रतम्। (अ० क०, पृ० ६७)

महाशीलम्

बाह्याङ्गनासम्पर्के बोधिचित्त[ा]च्यवनं शीलम्। (अ० क०, पृ० २५)

महासत्त्वः

बोधिचित्तेन कायमापूर्याविच्छिन्नप्रवाहज्ञानबिन्दुरूपत्वाद् महासत्त्वः।

(अ० क०, पृ० ५०)

अपरिमितसुखेन सत्त्वतर्पणान्महासत्त्वः। (अ० क०, पृ० ९२)

महासमयसिद्धिः

समयो देवता। समण्डलो मण्डलाधिपतिर्महासमयः, तस्य सिद्धिर्निष्पत्तिः। ..... सा सिद्धिर्महागुलिकासाधनम्। ज्ञानबिन्दुर्गुलिका, चतुर्बिन्दुः परिवारः, मध्यबिन्दुर्महागुलिका, तया साधनं निष्पादनं महासमयस्य सिद्धिः।

(म० त० टी०, पृ० २०)

महासाधनम्

आत्मवन्मण्डलसृष्टिर्महासाधनमुच्यते। (गु० स०, १८.१७३)

महासाधनकाले च बिम्बं बुद्धाधिपं विभुम्। (गु० स०, १८.१७५)

खभावं खमुखं शान्तं महासाधनमुच्यते। (गु० स०, १८. १७९)

महासाधनं प्रज्ञासङ्गेऽच्युतं सुखं सम्भवति यदा, तदा खलु महासाधनं सूक्ष्मयोगादिति। सुषुम्नानाडिकोर्ध्वं शुक्रसंयोगान्महासाधनम् इत्युच्यते नीतार्थेन। नेयार्थेन पुनः प्रज्ञाधर्मोदयनासिकाग्रे सर्षपादिकमिति नियमः। एवं महासाधनं भवति। (वि० प्र०, II.२०८)

महासुखकायः

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम् ।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं नत्वा कायं महासुखम् ॥

(वि० प्र०, III.४५)

महासुखम्

अविपरीतधूमादिनिमित्तद्वारेण महासुखमिति। (अ० क०, पृ० ३७)

महास्मृतिः

अनवरतसर्वाकारवरोपेतशून्यतानिमज्जनं महास्मृतिः।

(अ० क०, पृ० ८१)

महोपायः

महोपायः करुणा शुक्रगुणेन जगदर्थयोगान्महोपायः।

(अ० क०, पृ० २५)

महोपायश्चतुर्विंशतिस्थानगत्यागतिसुखेन सर्वाङ्गव्यापनात्।

(अ० क०, पृ० २६)

महोपेक्षा

क्लेशप्रतिपक्षमारणोपसंहारां महोपेक्षाम्। (कृ० त० टी०, पृ० १३६)

महोष्णीषकुलम्

महोष्णीषकुलम्, महदिति उष्णीषचक्रे व्यवस्थितो वज्रसत्त्वः, स तु ज्ञानात्मकत्वात् सहजप्रकृतिस्वभावः। (अ० क०, पृ० १४)

महोष्णीषः

महांश्चासौ उष्णीषश्चेति महोष्णीषः, सर्वतथागतबिन्दुः। उष्णीषाकारेण गगने राशीभूय व्यवस्थितत्वात्। (अ० क०, पृ० ४६)

मानः

चित्तसमुन्नतिर्मानः। (अ० क०, पृ० १०६)

मानी

मानोऽस्यास्तीति मानी। मानोऽप्यनेकधा— पण्डिताभिमानः, द्रव्यैश्वर्याभिमानः, दशतत्त्वपरिज्ञानमार्गरूपाद्यभिमानः, स यस्यास्ति स वर्जनीयः।

अधोऽधः सत्त्वान् पश्यतीति मानी, उत्तमोत्तमसत्त्वान् पश्यन् मानरहितो भवति सम्यग्मार्गवेत्तेति, तेन मानी करुणारहितो वर्जनीयः।

(वि० प्र०, II.३)

मामकी

मामकी चित्रिणी। .... दीर्घा सर्वाङ्गपूर्णा खलु लघुविषया चित्रिणी दीर्घकेशेति मामकी। (वि० प्र०, II.११७)

गौर्मामकी। (वि० प्र०, II.१२०)

माया

मन्त्राद्यधिष्ठानात् काष्ठादिकमसता गजादिरूपेण प्रथमानं माया, तत्साधर्म्याद् देव्योऽपि मायाः। (ख० त० टी०, २४०)

मायाजालः

महामायासमुद्भूतपरमसुखत्वेन मायाजालः। (अ० क०, पृ० ९९)

मायावज्रः

माया मनो विवर्त्ये(र्तं) वज्रोऽभेद्यत्वाद् यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० ५०)

मारणम्

मारणं रत्नत्रयादेरत्यन्तापकारिणाम्। (म० त० टी०, पृ० ११)

मारबलभङ्गः

कायवाक्चित्ताविद्यामाराणां जनकः क्षरः क्षणः कामदेवोऽभिधीयते। स तथागतेन विध्वस्तः परमाक्षरक्षणेन, तस्य भङ्गो मारबलभङ्गो रागद्वेषमोहक्रोधानामविद्यारूपाणां क्षयः। (वि० प्र०, III.१००)

मारः

माराणामिति क्लेशस्कन्धदेवमृत्यूनां चतुर्णाम्। (कृ० त० टी०, पृ० ५)

एतत्क्लेशस्कन्धदेवमृत्युरूपं चतुर्मारम्। (कृ० त० टी०, पृ० १२२)

महामार इति क्लेशादिकस्य लक्षणम्। (कृ० त० टी०, पृ० १३७)

कामेश्वरो मारः। (म० त० टी०, पृ० २९)

माराणां स्कन्धक्लेशमृत्युदेवपुत्रमाराणां चतुर्णाम् ...। (वि० प्र०, II.३)

स्कन्धक्लेशमृत्युदेवपुत्रमारम्। (वि० प्र०, II.१५१)

तत्र मारः कामदेवः पञ्चपुष्पबाणधनुर्हस्तः पाशाङ्कुशधरश्चतुर्भुज एकवक्त्रो रक्तवर्णः सव्ये पादतले रक्तवर्णः। (वि० प्र०, II.१५९)

रतिर्मारस्य। (वि० प्र०, II.१६०)

माराश्चत्वारः स्कन्धक्लेशमृत्युदेवपुत्रा इति। एषां बुद्धानां विनाशकाः।
(वि० प्र०, III.१४८)

मारारिः

प्रभास्वररत्नाक्रान्तकायवाक्चित्तरागत्वेन मारारिः। (अ० क०, पृ० ९२)

मार्गाश्रयणम्

एषोऽहमनुत्तरं बोधिमार्गमाश्रयामि यदुत वज्रयानम्।
(कृ० त० टी०, पृ० १३५)

मुक्तिः

शून्यताऽविनिर्भागवर्तित्वान्मुक्तिः। (अ० क०, पृ० ६७)

मुदिता

उत्पन्नकुशलमूलभोगैश्वर्यादिष्ववियोगेच्छास्वभावां मुदिताम्।
(अ० म०, पृ० ४)

सर्वाकारसुखोपसंहारवाञ्छात्मिकां मुदिताम्। (कृ० त० टी०, पृ० १२४)

मुदिता हृष्टचित्ततया पद्मे वज्रस्फुरणात्। (डा० जा० सं० र०, पृ० १)

मुद्गरयमारिः

आसंसारमशेषसत्त्वगतमहाकठिनसत्कायदृष्टिनो(दृष्टेरु)पभेदकत्वाद् मुद्गर इव मुद्गरः। स चासौ तस्या एव सत्कायदृष्टेर्नाशहेतुत्वेन यमात्मिकाया अरिश्चेति मुद्गरयमारिः। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

मुद्रा

मुद्रामिति रविसोमसम्पुटाम्। (म० त० टी०, पृ० ३२)

मुद्राचतुष्टयम्

वज्रपूजायां चतुर्मुद्रासंज्ञोच्यते। .... इह समयमेलापके चतुर्धा संज्ञा। आदौ या प्रज्ञा स्त्री सा गुह्यमुद्रोच्यते। श्रीनरो योगी उपायो दिव्यमुद्रा भवति समये। तयोर्मेलापके क्रीडाङ्गं चुम्बनादिकं कर्ममुद्रोच्यते। द्वीन्द्रियसंयोगे समसुखैर्धर्ममुद्रोच्यते। इति चतुर्धा समयभाषा वज्रपूजायामुक्ता।

(वि० प्र०, II.११६)

मुद्रात्रयम्

इह सर्वतन्त्रेषु बाह्ये नेयार्थेन ललाटे कायमुद्रा, कण्ठे वाङ्मुद्रा, हृदये चित्तमुद्रेति। नीतार्थेन पुनर् अब्जे वज्रप्रवेशो वज्रस्य सदोत्थानं कायमुद्रा, शिखिनि च मरुतो मध्यमानाड्यां प्राणवायोः प्रवेशो वाङ्मुद्रा, बिन्दुपातश्चित्तमुद्रा। (वि० प्र०, II.११०-१११)

मुद्राषट्कम्

कण्ठिकारुचककुण्डलानि शिरोमणिविभूषिताम् ।
यज्ञोपवीतं भस्मेति मुद्राषट्कं प्रकीर्तितम् ॥

(अ० म०, पृ० ८)

चक्रीकुण्डलकण्ठिकारुचकखट्वाङ्गमेखलाख्यपञ्च(षण)मुद्राधराम्।

(अ० म०, पृ० ७)

एताः षड् योगमुद्राः ...क्षितिजलहुतभुग्वायुखोच्छेदभावा अवस्थाः षडिति। ......चक्रीकुण्डलकण्ठिकारुचकमेखलांभस्मविशुद्धया मुद्रा योगिनामिति।

(वि० प्र०, II.११०)

मूढधी:

मूढा निर्विकल्पा धीः सहजज्ञानं यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० २१)

मूलानि (त्रीणि)

तत्र त्रीणि मूलानि स्मरेत्— बोधिचित्तोत्पादः, आशयविशुद्धिः, अहङ्कार-ममकारपरित्यागः कर्तव्यः। (वि० प्र०, II.१५३)

मूलापत्तयः (चतुर्दश)

[१]मूलापत्तिः सुतानां भवति शशधरा श्रीगुरोश्चित्तखेदात्
तस्याज्ञालङ्घनेऽन्या भवति खलु तथा भ्रातृकोपात्तृतीया ।
मैत्रीत्यागाच्चतुर्थी भवति पुनरिषुर्बोधिचित्तप्रणाशात्
षष्ठी सिद्धान्तनिन्दा गिरिरपि चलनेऽपाचिते गुह्यदानात् ॥

स्कन्धक्लेशादहिः स्यात् पुनरपि नवमी शुद्धधर्मेऽरुचिर्या
मायामैत्री च नामादिरहितसुखदे कल्पना दिक् च रुद्रा ।
शुद्धे सत्त्वे प्रदोषाद् रविरपि समये लब्धके त्यागतोऽन्या
सर्वस्त्रीणां जुगुप्सा खलु भवति मनुर्वज्रयाने स्थितानाम् ॥

मूलापत्तय उच्यन्ते ..... इह सर्वतन्त्रेषु मूलापत्तयश्चतुर्दश, तेषु प्रत्येकं भवति यथा तथाह— मूलापत्तिः सुतानाम् अभिषिक्तानां शिष्याणां भवति शशधरेति प्रथमा श्रीगुरोश्चित्तखेदादिति। अत्र गुरुर्द्विधा— सद्गुरुः, असद्गुरुश्चेति। तयोश्चित्तखेदाद् द्विधा परार्थतः स्वार्थतश्चेति। तत्र यस्य परार्थतश्चित्तखेदः स श्रीगुरुः। यस्य स्वार्थतश्चित्तखेदः सोऽसद्गुरुरिति। अत्र श्रीगुरोश्चित्तखेदो दशाकुशलप्रवृत्त्या शिष्यस्य भवति। तस्माच्चित्तखेदान्मूलापत्तिर्भवति, न स्वार्थप्रवृत्तस्य-गुरोर्दशाकुशलप्रवृत्तेरिति

१. का० त० ३.१०२-१०३

नियमः। तस्याज्ञालङ्घनेऽन्या द्वितीया मूलापत्तिर्भवति गुरोः। परोक्षेऽपि दशाकुशलं कुर्वत इति। एवं भ्रातृकोपात् तृतीया भवति। यदा ज्येष्ठे वा कनिष्ठे वा वज्रभ्रातरि शिक्ष्यमाणे प्रकोपं करोति। मैत्रीत्यागाच्चतुर्थीति। इह मैत्रीत्यागश्चतुष्प्रकारः, मृदुमध्याधिमात्राधिमात्राधिमात्रभेदेन। तत्र मृदुर्जले दण्डरेखावद् मैत्रीत्यागः क्षणमात्रं ततो निवर्तयति। मध्यमो बालुकारेखावद् वा तेन पुनः समत्वं याति। अधिमात्रात्मको भूमिस्फुटितवद् वर्षोदकेन पुनः समत्वं याति। ततोऽमैत्रीचित्तम् अधिमात्राधिमात्रात्मकं परिपक्वं यथा पाषाणो भिन्नः पुनर्न क्वचित् संपूर्णः समरसो भवति, यथा वा पक्वफलं न वृक्षे तिष्ठति। तद्वन्मैत्रीत्यागः सत्त्वानाम्। तेन चतुर्थी मूलापत्तिर्भवतीति नियमः। इषुरिति पञ्चमी भवति बोधिचित्तप्रणाशादिति। इह बोधिचित्तं शुक्रम्, तस्य विनाशाद् अच्युतसुखं न भवति। यतोऽतत्त्विनां द्वीन्द्रियसुखेन बुद्धत्वकाङ्क्षिणां पञ्चमी मूलापत्तिर्भवति। षष्ठी सिद्धान्तनिन्दा। सिद्धान्तं प्रज्ञापारमितानयं मन्त्रनये तत्त्वपटलम्, तस्य निन्दा या सा षष्ठीति। गिरिरिति सप्तमी भवति। अपाचिते नरे श्रावकमार्गस्थिते गुह्यदानाद् महासुखदानाद् आचार्याणामापत्तिः।

स्कन्धक्लेशादहीत्यष्टमी। स्कन्धक्लेशादि रूपवासः संन्यस्तादि शरीर-छेदनादिकमुच्यते। तस्मादष्टमी भवति। पुनरपि नवमी शुद्धधर्मे शून्यताधर्मेऽरुचिर्या भवति। मायामैत्री च मुखतोऽन्यद् वाक्यमिष्टम् हृदयेऽन्या चिन्तेति, मायामैत्री या सा दिगिति दशमी। नामादिरहितसुखदे तथागततत्त्वे कल्पना या सा रुद्रेति एकादशी। शुद्धे सत्त्वे योगिनीप्रदोषाद् रविरिति द्वादशी भवति। समये लब्धे सति त्यागतो गण-चक्रेऽन्या त्रयोदशी भवति। सर्वस्त्रीणां जुगुप्सा या सा मनुरिति चतुर्दशी। खलु निश्चिता भवतीति नियमः। केषाम् ? वज्रयाने स्थितानाम् अभिषिक्तानामिति नियमः। वज्रधरस्य स्थूलापत्तयोऽनेकास्तासां स्वल्पदण्डो भवतीति नियमः।

(वि० प्र०, II.९७-९८)

मैत्री

सर्वसत्त्वानामेकपुत्रवत्तथैवैकरसमहासुखसंयोजनां वाञ्छात्मिकां मैत्रीम्।

(अ० म०, पृ० ४)

सर्वसत्त्वेष्वेकपुत्रप्रेमतालक्षणां मैत्रीं ....। (कृ० त० टी०, पृ० १२४)

सहजानन्दसुखं [चित्तं] मैत्री। (अ० क०, पृ० ९१)

प्रेमातिशयेन कुम्भस्य स्पर्शनाद् मैत्री। (डा० जा० सं० र०, पृ० १)

मैत्रीकरुणामण्डलः

ज्योतिस्वभावेन मैत्री, बोधिचित्तत्वेन करुणा, तयोर्मण्डं सारं लातीति स तथा। (अ० क०, पृ० ७२)

मोक्षः

सम्यगनुभवत्वेन यावदाकाशमविनश्वरसुखगामित्वान्मोक्षश्चतुर्थार्थः।
(अ० क०, पृ० ६७)

सम्यग्ज्ञानस्वभावत्वाद् मोक्षः। (अ० क०, पृ० १०६)

मोक्षोऽत्र बोधिचित्तबिन्दूनां च्युतिक्षणः। (वि० प्र०, II.१९६)

सर्वचित्तावरणमोक्षणाद् मोक्षः। (ख० त० टी०, २४०)

दक्षिणदले नीलवज्रबीजोद्भवा मोक्षा नीलवर्णा। (ख० त० टी०, २४५)

मोहजापः

कामार्थं विह्वलीभूतान् सर्वत्राणहितैषिणः ।
सत्त्वान् मोहपदे स्थाप्य मोहजाप इति स्मृतः ॥
(गु० स०, १३.१९)

मोहनम्

मोहनं मूर्च्छासंजननम्। (म० त० टी०, पृ० ११)

मोहवज्रयमारिः

तत्र अभेद्यो मोहो मोहवज्रम्, तदेव महानर्थहेतुत्वाद् यम इव यमः, तस्यारिस्तस्योन्मूलकः। ग्राह्यग्राहकविचारसारतया स्वपरजस(स्व)रूपस्य प्रति मुहुरलीकत्वेन दर्शनात्, मोहस्य संक्षयात्। (कृ० त० टी०, पृ० २-३)

मोहसूदनः

मोहः शुक्रच्युतिस्तस्य सूदनाद् भक्षणान्मोहसूदनः। (अ० क०, पृ. २१)

मोहः

तत्र अनात्मन्यात्मग्रहो मोहः। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

मोह इति वैरोचनः। (कृ० त० टी०, पृ० ७)

अद्वयज्ञानधर्मेर्ष्याऽहङ्कारो मोह उच्यते। (गु० स०, १८.४९)

मौण्डी

सकलविकल्पक्लेशमुण्डनात् मौण्डी। (अ० क०, पृ० ६६)

मौलिसेकः

मौलिसेकेनेति मण्डलं प्रवेश्योदकाभिषेकानन्तरं मकुटाभिषेकेण।

(कृ० त० टी०, पृ० ४४)

यमघ्नः

यमघ्न इत्यक्षोभ्यः। ......अक्षोभ्यादयः पञ्च यमघ्ना अभिधीयन्ते। ततो मुद्राप्रस्तावे— "सर्वेषां माण्डलेयानां यमघ्नं शिरसि भावयेत्" इति तथागतानेव यथायोगं भावयेदिति। (कृ० त० टी, पृ० ७)

यमघ्नमित्यक्षोभ्यादिपञ्चकम्। ततो द्वेष-मोह-पिशुन-राग-ईर्ष्यायमारिषु यथाक्रमम् अक्षोभ्य-वैरोचन-रत्नसंभवामोघसिद्धयः शिरसि भावनीयाः। चर्चिकावाराहीसरस्वतीगौरीणां शिरसि वैरोचनाक्षोभ्यामिताभामोघसिद्धयो यथाक्रमम्। मुद्गर-दण्ड-पद्म-खड्ग-यमारीणां तु अक्षोभ्यवैरोचनामिताभामोघसिद्धयः। (कृ० त० टी०, पृ० ४३)

यमान्तकः

यमं द्वयं स्वपराभिनिवेशः, तस्यान्तको युगनद्धवाहीत्यर्थः।

(अ० क०, पृ० ४९)

यमान्तकृत्

अविनाशात्मका धर्मा अनुत्पादस्वभावतः ।
समयः सर्वभावानां तेनैवान्तककृद्यमः ॥

(गु० स०, १८.५२)

मोहो मोहोपभोगेन क्षयमोहो यमान्तकृत् ।
कायान्तकृद् भवेत्तेन तथा ज्ञेयान्तकृद्भवेत् ॥

(गु० स०, १८.५७)

यमारिः

ग्राह्यग्राहकाकारपरिहीणमहासुखैकरसं यज्ज्ञानं तद् यमारीत्यर्थः।

(कृ० त० टी०, पृ० १३४)

यानत्रयम्

अत्र यानत्रयं श्रावकयानम्, प्रत्येकबुद्धयानम्, सम्यक्सम्बुद्धयानम्। गम्यतेऽनेनेति यानम्। (वि० प्र०, III.१४८)

योगचर्या (द्विधा)

इह योगिनां चर्या द्विधा— एका बाह्या, द्वितीयाऽऽध्यात्मिकी। तत्र या बाह्या सा लौकिकफलहेतोः। या चाध्यात्मिकी सा लोकोत्तरफलहेतोर्योगिना कर्तव्येति। (वि० प्र०, II.२१४)

योगतन्त्रम् (प्रज्ञोपायात्मकम्)

....स्वरूपतः सर्वमेव प्रज्ञोपायात्मकं योगतन्त्रम्। तथाह—

[१]हेकारेण महाकरुणा वज्रं प्रज्ञेति भण्यते ।
प्रज्ञोपायात्मकं तन्त्रं तन्मे निगदितं शृणु ॥

इति वचनान्न हेवज्रं प्रज्ञातन्त्रं भवति, प्रज्ञातन्त्रं शृण्विति वचनाभावात्। तथा समाजे —

---

१. हे० त० १.१.७

[१]प्रज्ञोपायसमापत्तिर्योग इत्यभिधीयते ।
[२]समाजं मीलनं प्रोक्तं सर्वबुद्धाभिधानकम् ॥

इति वचनात्, नेदमुपायतन्त्रं भवति। तथा आदिबुद्धे—

योगो नोपायकायेन नैकया प्रज्ञया भवेत् ।
प्रज्ञोपायसमापत्तिर्योग उक्तस्तथागतैः ॥

(वि० प्र०, III.६-७)

योगनिद्रा

एकान्तनिर्विक्षेपत्वेन निद्रा साधर्म्यान्निद्रेव निद्रा; योगश्चासौ निद्रा च योगनिद्रा। (म० त० टी०, पृ० ३३)

योगपीठानि (चत्वारि)

इह नाभिचक्रे प्रथमपरिमण्डले चतुर्दलानि। तेषु पूर्वदलमात्मपीठं दक्षिणं परपीठं पश्चिमं मन्त्रपीठमुत्तरं तत्त्वपीठमिति। (वि० प्र०, III.१०६-१०७)

योगसंवरम्

कर्मभिराश्लेषचुम्बनादिभिर्योगसंवरं कारयेत्। योगश्च संवरं च योगसंवरम्। तत्र नाभिकमलकर्णिकारविसोमसम्पुटगतसितसूक्ष्मबिन्दुर्योगः। संवरं सुख-वरं महासुखं प्रतिवेधविचारणानन्तरं कर्म...... ।(म० त० टी०, पृ० ,२०)

योगः

ज्ञानमात्रालयत्वाद् योगः। (अ० क०, पृ० १०६)

वज्रसत्त्वस्य निष्पत्तिर्योग इत्यभिधीयते। (कृ० त० १७.९)

सप्तविधानुत्तरपूजातः प्रभृति यावद् वज्रसत्त्वनिष्पत्तिपर्यन्तं योग इत्यर्थः।

(कृ० त०, पृ० १२३)

---

१. गु० त० १८.३२
२. गु० त० १८.२४

प्रज्ञोपायसमापत्तिर्योग इत्यभिधीयते ।
योनिस्वभावतः प्रज्ञा उपायो भावलक्षणम् ॥
(गु० स०, १८.३२)

योग इति चण्डालीशुक्लयोरैक्यम्। (डा० जा० सं० र०, पृ० ४)

योगः श्रीहेरुकः। (म० त० टी०, पृ० ३१)

योगो रविसोमसम्पुटे बिन्दुयोगः। (म० त० टी०, पृ० ३५)

योगः (त्रिविधः)

मन्त्रसंस्थानधर्मात्मा योगस्त्रिविध उच्यते। (म० त0, पृ० २७)

तत्त्वालम्बनसमाधिर्योगः। स योगस्त्रिविधस्त्रिप्रकारः। कुतः ? यस्मान् मन्त्रसंस्थानधर्मात्मा। तत्त्वद्योतकं वचनं मन्त्रः, देवतामूर्तिः संस्थानम्, मन्त्रार्थज्ञानं धर्मः। (म० त० टी०, पृ० २७)

योगाभ्यासः

इह मन्त्रयाने पारमितायाने द्विधा योगाभ्यासः— आकाशे योगाभ्यासः, अभ्यवकाशे च। य आकाशे योगमाप्स्यते स रात्रौ निश्छिद्रगृहेऽन्धकारे आकाशासक्तचित्तो धूमादिकं निमित्तं पश्यत्यनिमिषनयनो वज्रमार्गं प्रविष्ट इति। इह मध्यमाप्राणप्रविष्टः ''शून्यादेवाकाशासक्तचित्तैरनिमिषनयनैर्वज्रमार्गं प्रविष्टैः, शून्याद्धूमो मरीचिः प्रकटविमलखद्योत एव प्रदीपः'' इति निशायोगेन पश्यति। ततो निरभ्रं गगनं पश्यति। ततो गगनात् पुनर्दिवायोगे— ''गगनोद्भवः स्वयम्भूः प्रज्ञाज्ञानानलो महान्'' (ना० सं० ६.२०) इति ज्वाला दृश्यते निरभ्रे गगने। एवम्— ''वैरोचनो महादीप्तिर्ज्ञानज्योतिर्विरोचनः'' (ना० सं० ६.२१) चन्द्राभासः, जगत्प्रदीपः सूर्यः, ज्ञानोल्को वज्रराहुः, महातेजाः प्रभास्वरो विद्युत्परकलेति, विद्याराजोऽग्रमन्त्रेशो बिन्दुक इति। एवं दशधा निमित्तं समाजादौ रात्रियोगेन, नामसंगीत्यां दिवायोगेन भगवतोक्तम्। (वि० प्र०, III.५४)

योगिनीतन्त्रम्

यत्र योगिनीनां सञ्चारो नायको निश्चलः संवृत्या तद् योगिनीतन्त्रम्।

(वि० प्र०, III.६)

योगी

कायवाक्चित्तैकीकरणाद् योगी। (अ० क०, पृ० ४४)

आदिकर्मिको मन्त्रे सिद्धे सति योगी भवति। (वि० प्र०, III.७४)

योनिः

महासुखाकारसम्भोगकायो योनिः। (अ० क०, पृ० ४५)

रतिः

रतिरनुपमप्रीतिः। (अ० क०, पृ० ८०)

रतिरत्यन्तसंभोगं सम्पदः स्त्रीसुखं परम्। (गु० स०, १८.५०)

रत्नकेतुः

सर्वजनरञ्जनार्थेन सुखरत्नाङ्कितः केतुः रत्नकेतुः। (अ० क०, पृ० ८७)

रत्नजापः

अथानुगमजापेन निःस्वभावेन चारुणा ।
विचारणं त्र्यध्वबुद्धेभ्यो रत्नजापः सोच्यते ॥

(गु० स०, १३.१६)

रत्नत्रयम्

रत्नानि धर्मसम्भोगनिर्माणाख्यानि सहजैकरूपाणि। (अ० क०, पृ० ४७)

रत्नत्रयं वै बुद्धरत्नम्, धर्मरत्नम्, संघरत्नम्। (वि० प्र०, III.१४८)

रत्नधृक्

चित्तं रत्नमिति ख्यातमर्थैः सर्वैः समुद्भवम् ।
वेदकेन ध्रुवं वेद्यं वेदना रत्नधृङ् मनः ॥

(गु० स०, १८.४१)

रत्नसंभवः

ज्ञानमेव महासुखचित्तमेव काय उपचयात्मकत्वात्, यस्य स च रत्नसंभवः कण्ठचक्रवर्ती। (अ० क०, पृ० १९)

रत्नसंभवोऽश्वः। (वि० प्र०, II.११७)

अश्वो वै कामलोलो भवति परवशो मूत्रगन्धः परार्थीति रत्नसंभवः।

(वि० प्र०, II.११८)

समताज्ञानं वेदनास्कन्धजनको रत्नसंभवः।

(वि० प्र०, II.१५८)

अघोरो रत्नसंभवः। (वि० प्र०, II.१८६)

रक्तं रत्नसंभवः। (वि० प्र०, III.६९)

रागजापः

रागवज्रोद्भवां वाचं कायवाक्चित्तसंस्थिताम् ।
सत्त्वान् रागपदे स्थाप्य रागजाप इति स्मृतः ॥

(गु० स०, १३.२०)

रागः

सर्वधर्मासक्तो रागः। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

रुद्रः

रागद्वेषमोहमानात्मकं रुद्रम्। (वि० प्र०, II.१५१)

रुद्रस्त्रिनेत्र एकाननश्चतुर्भुजस्त्रिशूलडमरुकपालखट्वाङ्गधरो वामपादतले शुक्ले शुक्ल इति। (वि० प्र०, II.१५९)

उमा रुद्रः। (वि० प्र०, II.१६०)

लयनम्

रतिहेतुत्वाद् लयनम्। (अ० क०, पृ० १०६)

लोकनाथः

भवरागतृष्णामलप्रहीणत्वाल्लोकनाथः। (अ० क०, पृ० ९२)

लोकलोकोत्तरकुलम्

लोकशब्देन कायवाक्चित्तमुच्यते। तदुत्तरं धर्मं (हृदय)चक्रम्, तत्र तन्महासुखलक्षणोऽमिताभः सहजसंज्ञास्वभावः। (अ० क०, पृ० १४)

लोकालोककुलम्

लोको लोकादयः। तेषामालोकः प्रभास्वरम्, तस्य कुलं स्थान(नं) कण्ठचक्रे व्यवस्थितो रत्नस्वभावः, महासुखवेदकत्वाद् वज्रवेदना-स्वभावः। (अ० क०, पृ० १४)

लोचना

लोचना हस्तिनी च। ....एवं स्थूला खर्वा दृढाङ्गी सुकठिनविषया हस्तिनी स्थूलकेशेति लोचना। (वि० प्र०, II.११७)

हस्ती लोचना। (वि० प्र०, II.१२०)

लौकिकलोकोत्तराभिषेकः

इह यद्धसितेक्षणपाण्यासिद्वन्द्व इति चतुर्विधोऽभिषेक आचार्य-गुह्य-प्रज्ञाज्ञानम्, "चतुर्थं [तत्] पुनस्तथा" (गु० स०, १८.११२) [इति] शब्दे-

नोक्तः समाजादौ कलशादिकः, स सेकः संकेतमात्रं संवृत्याचार्यकरणाय, न तत्त्वम्, ''सिक्त्वा तत्त्वं प्रकाशयेत्'' इति वचनाच्चतुर्विधः सेकस्तत्त्वं न भवति हसितेक्षणपाण्यासिद्वन्द्वयोग इति। इह तत्त्वं निर्द्वन्द्वं कर्ममुद्रा-हेतुनोत्पन्नमद्वयज्ञानं न भवति विचार्यमाणम्। इह यदि प्रज्ञाया हेतुनोत्पन्नं सुखमुपायस्य प्रज्ञाज्ञानम्, तद्वा उपायहेतुनोत्पन्नं प्रज्ञाया उपायज्ञानं भवति सिद्धये। एवं चेद् द्वे ज्ञाने भवतः, उभयज्ञानभेदात्। अतोऽद्वयं न भवति। अद्वयाभावाद् बुद्धत्वाभाव इति। अथ प्रज्ञाया ज्ञानं प्रज्ञाज्ञानम्, तथापि दोषः, उपायस्य ज्ञानमुपायज्ञानमिति सिद्धम्। तस्मादुपायस्य सुखं क्षरं द्विधा बालं प्रौढम, प्रज्ञायाः स्पन्दसुखं वृद्धम्, तयोर्द्वयोर्यदा निःस्पन्दं भवति महामुद्राद्वारेण तद् द्वीन्द्रियरहितमद्वयम्। अतः प्रज्ञायाः स्तनस्पर्शनादिकं लौकिकं दर्शितं मार्गावतारणार्थम्। सेको लोकोत्तरो यः परमजिनपते-र्दिव्यमुद्रानुषङ्गः स एवोच्यते। (वि० प्र०, III.५२-५३)

वज्रखड्गः

महासुखाधारतया वज्रमद्वयज्ञानमेव खड्गः सर्वक्लेशनिषूदनात् यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० ५१)

वज्रगौरी

वज्राऽभेद्यत्वाच्छून्यतादृष्टिर्गौः, जन्मावरणप्रतिपक्षत्वात्, तां राति आदत्त इति वज्रगौरा, वज्रगौरे(रै)व वज्रगौरी, स्वार्थे इण्। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

वज्रघण्टा

वज्रघण्टा चेति घण्टाभिषेकेण। (कृ० त० टी०, पृ० ४४)

वज्रघोषः

कायोऽपि सर्वाकाशव्यापी महासुखनादत्वाद् वज्रघोषः।

(अ० क०, पृ० ५३)

वज्रचक्षुः

चक्षुर्वज्रं वज्रचक्षुः, दिव्यचक्षुरभिज्ञेत्यर्थः। (म० त० टी०, पृ० ४१)

वज्रचण्डः

अप्रतिष्ठितसुखनिर्वाणगतिवेगित्वाद् वज्रचण्डो वज्रवेगः।

(अ० क०, पृ० ५०)

वज्रचर्चिका

तत्र वज्रमिव वज्रम्, अनर्थजनकत्वात् क्लेशावरणम्, तस्य चर्चिका एकानेकवियोगेन विचारिका, तस्य नाशयित्रीति यावत्।

(कृ० त० टी०, पृ० ३)

वज्रचित्तम्

चित्ताख्यमिति वज्रचित्तम्, परचित्तज्ञानमित्यर्थः। (म० त० टी०, पृ० ४२)

वज्रडाकिनी

''डै वैहायसगमने'' (९६८ भ्वा०), ऐकारस्यात्वम्। डानं डाः, आकाशगमनमित्यर्थः। डाशब्दात् तृतीया। ''अक अग कुटिलायां गतौ'' (७९२-७९३ भ्वा०)। अत्र सर्वतो गमनं कुटिला गतिः। डा अकितुं शीलमस्या इति डाकिनी, सा ह्याकाशकोटिनियुतशतसहस्रैर्युगपत् सर्वतो गामिनीत्यर्थः। तथा चोक्तम्—

डै वैहायसगमने धातुरत्र विकल्पितः।
सर्वाकाशचर(री) सिद्धिर्डाकिनीति प्रसिद्ध्यति ॥ इति।

वज्रग्रहणं बाह्यडाकिनीव्यवच्छेदार्थम्। वज्रमशनिः, अप्रपञ्चज्ञानमयत्वात्, डाकिन्यश्चेति वज्रडाकिन्यः। (म० त० टी०, पृ० ३)

वज्रधरः

शून्यताकरुणाभिन्नं महासुखज्ञानवज्रं तादात्म्येन धरतीति वज्रधरः। वज्र-मभेद्य(द)ज्ञानमसत्संकल्पास्थित(तं) स्कन्धक्लेशमृत्युविघ्नमारैरभेद्यत्वात्। ... तत्सूचकं पञ्चशू(सू)चिकवज्रं बहिः, तदीयस्तत्त्व(तदन्तस्तत्त्व)सूचनार्थ धरतीति वा वज्रधरः। (अ० क०, पृ० २)

इदं बुद्धवक्त्रं ज्ञानवक्त्रं यस्याचार्यस्य हृदयगतं भावितं स्वानुभवं(भूतं) मुखगतं शिष्येभ्यः प्रतिपादनाय वर्तते सर्वकालम्, स श्रीगुरुर्वज्रधर इत्यर्थः। नान्ये द्वीन्द्रियसुखावबोद्धार इति। (वि० प्र०, III.५३)

वज्रधात्वीश्वरी

श्रीरिति वज्रधात्वीश्वरी, श्रीः सुभद्रा। .... इह सुभद्रा तन्वङ्गी सूक्ष्मकेशा मृदुकरचरणा सत्त्ववत्सलेति वज्रधात्वीश्वरी। (वि० प्र०, II.११७)

वज्रधात्वीश्वरी सर्वरूपधारिणीति। (वि० प्र०, II.१२०)

वज्रधृक्

पञ्च हेतिश्च वेतिश्च वज्रमित्यभिधीयते ।
धारणं धृगिति ख्यातं विज्ञानं वज्रधृङ्मनः ॥
(गु० स०, १८.३९)

वज्रपर्यङ्कः

वज्रपर्यङ्कशब्देन सन्ध्याभाषया पद्ममित्युक्तं भगवता। (डा० जा० सं० र०, पृ० ३)

प्राणापानोपरोधादद्वयीभूताशेषसमाधिवज्रमयः पर्यङ्को यस्यासावशेषवज्र-पर्यङ्कः। (अ० क०, पृ० ७५)

वज्रपाणिः

वज्राणि आदर्शादिपञ्चज्ञानानि पाणी(णा)विवायत्तत्वात्तादात्म्येन येषां तैस्तथागतैर्वज्रपाणिभिः। (अ० क०, पृ० ५)

वज्रपाशः

वज्रस्य चित्तवज्रस्य पाश इव पाशो यस्य स तथा, अन्तःप्राणबन्धेन चित्त-वज्रस्यापि बन्धनात्। (अ० क०, पृ० ४८)

वज्रबाणः

अवधूतीबाणवज्रेण नासारन्ध्रद्वयनिरोधाद् वज्रमवधूती, तदेव बाणायुधम्। (अ० क०, पृ० ५१)

वज्रबुद्धिः

वज्रमार्गाच्युतत्वेन वज्रबुद्धिः। (अ० क०, पृ० ७५)

वज्रमण्डः

दिव्यसुखास्वादरूपत्वाद्वज्रमण्डोऽभेद्यसारः। (अ० क०, पृ० ५०)

वज्रमार्गः

वज्रमार्गादिति पुरुषेन्द्रियरन्ध्रात्। (कृ० त० टी०, पृ० ५४)

वज्रमाला

वज्रं पीठोपपीठादिशरीरस्थानम्। लयभोगादिक्रमेण सहजोत्पत्तिर्वज्रमाला। (अ० क०, पृ० ५२)

वज्रम्

शून्यताज्ञानमेवाभेद्यत्वाद् वज्रम्। (अ० म०, पृ० ५)

वज्रमिति कृष्णपञ्चशूकवज्रम्। (कृ० त० टी०, पृ० १६)

वज्रमिति पञ्चशूकम्। (कृ० त० टी०, पृ० ११९)

लक्षणं रागमासक्तिर्ज्ञानोऽयं वज्रमुच्यते। (गु० स०, १८.५०)

इहैककुलं त्रिकुलं पञ्चकुलं षट्कुलं वज्रमुच्यते। तैर्वज्रैर्वक्त्रभेदो भवति। एककुलेन एकमुखम्, त्रिकुलैः शुद्धं त्रिमुखम्, पञ्चकुलैः शुद्धः पञ्चाननो भवति, षट्कुलैः शुद्धः षण्मुखो भवति भीम इति। (वि० प्र०, III.८)

पुरुषेन्द्रियं वज्रम्। (वि० प्र०, III.६९)

वज्रयानम्

मोहो द्वेषस्तथा रागः सदा वज्रे रतिः स्थिता ।
उपायस्तेन बुद्धानां वज्रयानमिति स्मृतम् ॥

(गु० स०, १८.५१)

वज्रयानं सम्यक्संबुद्धयानम्, तीर्थिकश्रावकप्रत्येकबुद्धयानानामभेद्यत्वात्। वज्रं मोक्षो यायतेऽनेनेति वज्रयानम्। (वि० प्र०, II.३)

वज्रयोगः

प्रज्ञोपायाम्बुजं वज्रं साधाराधेयमुच्यते ।
तयोर्द्वन्द्वं समापत्तिर्वज्रयोगोऽद्वयोऽक्षरः ॥
चतुर्धा वज्रयोगं तं कालचक्रं नमाम्यहम् ।

(वि० प्र०, III.१०३)

वज्रयोगिन्यः

वज्रो हेरुकः, योगिन्यः पञ्चडाकिन्यः। (म० त० टी०, पृ० ३१)

वज्रयोनिः

वज्राणां सर्वतथागतकायवाक्चित्तज्ञानवज्राणां योनिरुत्पत्तिस्थानम्, सहजानन्दोत्पत्तित्वात्। (अ० क०, पृ० ५०)

वज्रलक्षणम्

वज्रमष्टाङ्गुलं प्रोक्तं यद्वा तद् द्वादशाङ्गुलम् ।
वज्रमष्टविधं कार्यं हेमताम्रादिसंभवम् ॥

त्रिशूकं पञ्चशूकं च नवशूकमिति त्रिधा ।
द्विधा भूयोऽपि भिद्येत सौम्यासौम्यप्रभेदतः ॥

चतुर्थं विश्ववज्रं च पञ्चशूकं चतुर्मुखम् ।
मध्यमं ग्रहणस्थानं शूकं तन्मानमन्तयोः ॥

मकरदन्तदष्टात्तं मकरान्त्रेण निर्गतम् ।
स्थूलशूलकृशाग्राग्रं तीक्ष्णक्रमनमन्मुखम् ॥

अनतिक्रान्तदिग्भागं मध्यशूकं पृथूदरम् ।
अन्तरं चतुरसा(स्राणां)नां शूकरामध्यशूकतः ॥

वज्रानुरूपतो ह्रासवृद्धी मानप्रमाङ्गुलौ ।
यस्य च समाः शून्याः(लाः) किञ्चिदूनास्तु मध्यमात् ॥

दष्टाष्टशूलमूलाशा विकचाम्बुजमेखलाः ।
ईषदस्याधिकः कार्यो मेखला मध्यमांसकः ॥

अन्योन्येन समौ शेषौ क्रमेण द्विगुणौ कृतौ ।
राजदष्टदलाम्भोजमुखमूलावली द्वयोः ॥

(कृ० त० टी, पृ० १०३-१०४)

वज्रलोचनः

मांसादिचक्षुरादेर्विश्वदर्शनाव्याहतदर्शनाद् वज्रलोचनः।

(अ० क०, पृ० ५२)

वज्रवाराही

वज्रमिव वज्रम्, अनर्थहेतुत्वात् कर्मावरणम्, तस्य वारणं वारः, तम् आसमन्ताद् हिनोति बोधयतीति। (कृ० त० टी०, पृ० ३)

वज्रसत्त्वः

अराभ्यां प्रज्ञोपायाभ्यां पचनं स्फुटीभावो यस्य स उष्णीषचक्रवर्ती वज्रसत्त्वः। (अ० क०, पृ० १९)

अभेद्यबोधिचित्तरूपत्वाद् वज्रसत्त्वः। (अ० क०, पृ० ५०)

परमार्थसुखज्ञानं वज्रसत्त्वः। (अ० क०, पृ० ८८)

पञ्चाक्षरो महाशून्यः स्वरसमूहः [शुक्रं] चन्द्र इत्युच्यते। बिन्दुशून्यः षडक्षरो व्यञ्जनसमूहो रजः सूर्य इत्युच्यते। अत्र च शुक्रं चन्द्रो वंकारो वज्रम्, रजः सूर्य एकारः पद्मम्, अनयोर्वज्रपद्मयोरेकत्वं वज्रसत्त्व इति। वज्रं परमसुखं ज्ञानं शुक्रं सत्त्वः सर्वाकारप्रज्ञाबिम्बं ज्ञेयमिति। ज्ञानविज्ञानाधिष्ठितं निरावरणमेकलोलीभूतं जगदर्थकारी वज्रसत्त्व इति।

(अ० क०, पृ० ८९)

वज्रम् अनुत्तरा बोधिः, तस्यां सत्त्वमाशयो यस्यासौ तथा, बोधिसत्त्व इत्यर्थः। (कृ० त० टी०, पृ० ५७)

यत्र तु वज्रधरस्य निष्पत्तिर्नास्ति, तत्र सर्वसंहारजचिह्नस्थबीजमेव वज्रसत्त्वः। यतो वज्रं चिह्नमुच्यते, तत्र यत् सत्त्वं बीजं तद्वज्रसत्त्वम्।

(कृ० त० टी०, पृ० १२१)

वज्रमभेद्यज्ञानम्, तस्यास्तित्वं सत्त्वम्। (कृ० त० टी०, पृ० १३३)

षण्णां चक्रवर्तिनामाद्यत्वाद् आदिबुद्धो वज्रसत्त्वः। (ख० त० टी०, २३३)

आदिधर्मो वज्रसत्त्वः, धर्मकायात्मकत्वात्। (ख० त० टी०, २३४)

तथा चोक्तं श्रीपरमाद्ये—

आकाशोत्पादचिह्नत्वादनादिनिधनः परः।
सर्ववज्रमयः सत्त्वो वज्रसत्त्वः परः सुखमिति॥

(ख० त० टी०, २३५)

कालाग्निर्वज्रसत्त्व इति। (वि० प्र०, II.१८६)

उक्तं भगवता मूलतन्त्रे पञ्चमे पटले—

अभेद्यं सर्वतो ज्ञानं वज्रमित्यभिधीयते ।
त्रिभवस्यैकता सत्त्वो वज्रसत्त्व इति स्मृतः ॥

(वि० प्र०, III.६२)

वज्रमुपायः। ...... सत्त्वं पद्मं प्रज्ञा, एवं वज्रसत्त्वः। (वि० प्र०, III.१०३)

वज्रसरस्वती

वज्रमभेद्यज्ञानम्, तदेव सरः, ज्ञेयावरणसां(सं)तापापनयात्।

(कृ०·त० टी०, पृ० ३)

वज्राङ्कुशः

वज्रेणाङ्कुशवत् सर्वसुखसमाधीनामाकर्षणाद्वज्राङ्कुशः।

(अ० क०, पृ० ४८)

वज्राचार्यः

.... तस्मात् कायवाक्चित्ताभेद्यत्वाद् वज्राचार्यः शाक्यमुनिस्तथागत इति। इह त्रैधातुके सत्त्वार्थं प्रति यस्य कायवाक्चित्तमभेद्यं वज्रवदाचरति स वज्राचार्यः सर्वगः सर्वज्ञ एव। (वि० प्र०, II.५)

इहाचार्यपरीक्षायां त्रिधा वज्राचार्यः— उत्तमो मध्यमोऽधम इति। तद्यथा—

दशतत्त्वपरिज्ञानात् त्रयाणां भिक्षुरुत्तमः ।
मध्यमः श्रामणेराख्यो गृहस्थस्त्वधमस्तयोः ॥

(वि० प्र०, II.४, १४६)

वज्रात्मा

ज्ञानकायत्वेनाभेद्यत्वाद् वज्रात्मा। (अ० क०, पृ० ४५)

वज्राधिपतिः

रूपवज्रादयः षट्का वज्राधिपतयः स्मृताः ।
समयवज्रादयः षट्काः पृथिव्यादिषु पञ्चकाः ॥

(गु० स०, १८.६४)

वज्रानुस्मृतिभावना

द्वयेन्द्रियसमापत्त्या वज्रसत्त्वं विभावयेत् ।
रोमकूपाग्रविवरे वज्रमेघान् स्फरेद् बुधः ॥

(गु० स०, ७.२३)

वज्रावेशः

महासुखतया उष्णीषक्रमणाद् वज्रस्य ज्ञानवज्रस्य प्राणापाननिरोधेन ध्वधूननकम्पनादिनाधिष्ठानं तद्योगाद् वज्रावेशः, त्रैधातुकमहामुद्राभिषेक-दायीत्यर्थः। (अ० क०, पृ० ५२)

वज्री

वज्रमभेद्यस्य परमाक्षरसुख[स्य] ज्ञानमच्युतं तदस्मिन्नस्तीति वज्री।

(वि० प्र०, III.६०)

वज्रोदकम्

वज्रोदकं मद्यम्......धर्मः संघो वज्रोदकम्, इत्येषां तुल्यस्वभावः। वज्रोदकं हि बोधिचित्तं स एव धर्म आर्यमार्गत्वात्, स एव संघः सवीर्य-पुद्गलसंग्राहकत्वात्। वसादीनां च तुल्यस्वभावो बोधिचित्तमेव, प्रकाशमात्रत्वात् धर्माणां आकाराणामलीकत्वात्।

(ख० त० टी०, २५१-२५२)

वशम्

वशमिति सिद्धस्य बन्धनम्। (कृ० त० टी०, पृ० १९)

वश्याकर्षणकर्माणि

वशं गतो वश्यः। इह तु वश्यार्थं कर्म वश्यमुक्तम्। आकर्षणे द्वे पादाकर्षणं पिण्डाकर्षणं च। प्रथमं भूम्या, द्वितीयम् आकाशेन। त्रीण्येतानि कर्माणि वश्याकर्षणकर्माणि। (म० त० टी०, पृ० ११)

वागीश्वरः

अनाहतध्वनिसमुल्लासेन सर्वचित्तक्षणरूपबुद्धानामाप्यायनाद् वागीश्वरः।
(अ० क०, पृ० ७०)

वाग्जापः

वाक्यसमयसम्बोधिः शब्दाशब्दविचारणम् ।
वाग्वज्र इति प्रोक्तो वाग्जापः स उच्यते ॥
(गु० स०, १८.१४)

दक्षिणे गतिगतः प्राणो वाग्जाप इत्युच्यते। (वि० प्र०, II.२०७)

वाङ्मण्डलम्

वाक् प्रज्ञा, चित्तमुपायः, प्रज्ञोपाययोरद्वयीभावो वाङ्मण्डलम्; तच्च प्रज्ञाप्रधानम्। (ख० त० टी०, २४७)

वाचानुस्मृतिभावना

यदेव वज्रधर्मस्य वाचो निर्युक्तिसम्पदः ।
ममापि तादृशो वाचो भवेद् धर्मधरोपमः ॥
(गु० स०, ७.२९)

विघ्नराट्

विघ्नो मारः, स्वचित्तप्रसरः "मारः स्वचित्तं न परोऽस्ति मारः" इति। तद्विनाशेन राजत इति विघ्नराट्। (अ० क०, पृ० २५५)

विघ्नान्तकृत्

निर्विकल्पात्मका धर्माः प्रकृत्या शान्तभावतः ।
समयः सर्ववज्राणां तेन विघ्नान्तकृत् प्रभुः ॥
(गु० स०, १८.५५)

सर्वक्लेशक्षयं यत्तत् सर्वकर्मक्षयं तथा।
सर्वावरणक्षयं ज्ञानं विघ्नान्तकृदिति स्मृतम्॥
(गु० स०, १८.६०)

विचारः

विचारेण(रो) नाम भावप्रकाशः। (डा० जा० सं० र०, पृ० ५-६)

वितर्कः

वितर्को नाम भावग्रहणं चित्तस्य। (डा० जा० सं० र०, पृ० ५)

विद्या

विद्या महाप्रज्ञाज्ञानम्। (अ० क०, पृ० ४०)

निरुत्तरज्ञानस्वभावत्वाद् विद्या। इयं महामायाख्या विद्या साधकानां त्रैलोक्यं साधयति। (म० त० टी०, पृ० ६)

विद्या महामाया। (म० त० टी०, पृ० ११)

विद्याशब्देन भावनामयी प्रज्ञोच्यते। सा पुनर्मूर्तिभावनापरिनिष्पत्तिरूपं स्वदेवताकारस्यात्मनः परिस्फुटं दर्शनम्। (म० त० टी०, पृ० १३)

विद्यास्तारा-पाण्डरा-मामकी-लोचना इति। (वि० प्र०, II.१९४)

विद्याभिर्लोचनादिभिश्चतसृभिः ....। (वि० प्र०, II.१९९)

तस्मात् परमाक्षरो महारागो विद्या। (वि० प्र०, III.९७)

विद्यापुरुषः

कायवाक्चित्तवज्रेण भेद्याभेद्यस्वभावतः।
विद्यया सह संयुक्तो विद्यापुरुष उच्यते॥
(गु० स०, १८.३८)

विद्याराजः

विद्याया महामुद्राया राजा स्वामी विद्याराजः। (अ० क०, पृ० ४६)

भूतभौतिकविख्याता विद्याराजेति विश्रुता ।

(गु० स०, १८.६३)

विद्वान्

अत एव विद्वान्, मणिवरटकान्तरच्युतसुखवेदनात्। (अ० क०, पृ० २३)

विद्वेषणम्

अन्योन्यमनुरक्तयोरपि विद्वेषणं विद्वेषः। (म० त० टी०, पृ० १२)

विधाता

यथाभव्यतया सर्वमन्त्रमुद्राभिसमयमण्डलोत्सङ्गादिकरणाद् विधाता।

(अ० क०, पृ० ४७)

विमुक्तिः

प्राकृतरागादिबन्धनविगमेन पञ्चकामोपभोगेन महारागस्य सम्यक् परिज्ञान-लाभाद्विमुक्तिर्भगवान्। उक्तं च—

[१]रागेण बध्यते लोको रागेणैव विमुच्यते ।
विपरीतभावना ह्येषा न ज्ञाता बुद्धतीर्थिकैः ॥

[२]येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः ।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फोटयेद्विषम् ॥

[३]यथा पावकदग्धाश्च स्विद्यन्ते वह्निना पुनः ।
तथा रागाग्निदग्धाश्च स्विद्यन्ते रागवह्निना ॥

---

१. हे० त० २.२.५१
२. हे० त० २.२.४६
३. हे० त० २.२.४९

[१]येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥

अन्यत्र च—

[२]तनुतरचित्ताङ्कुरको विषयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धैः ।
गगनव्यापी फलदः कल्पतरुत्वं कथं लभते ॥

केचिद् विषयान् त्यक्त्वा केचिद् विषयानबाधितान् कृत्वा ।
केचिद्विषयैरेव तु नरवृषभाः [प्र]कुरुते बोधिम् ॥
(अ० क०, पृ० ६७-६८)

रागादिबन्धनापगमहेतुत्वाद् [वि]मुक्तिः। (अ० क०, पृ० १०६)

विमोक्षचतुष्टयम्

ततश्च चतुर्विमोक्षं विभावयेत्। शून्यतामनिमित्तमप्रणिहितमनभिसंस्कार-मिति। (वि० प्र०, II.१५३)

विमोक्षः

सम्यग् ज्ञानाग्निभस्मीकृतसत्त्वरजस्तमस्कन्धत्वेन विमोक्षः।
(अ० क०, पृ० ६७)

विरमानन्दः

अहो ज्ञातमहो ज्ञातमहो ज्ञातमिदं स्फुटम् ।
इत्याभोगपरं चित्तं विरमानन्दमात्रकम् ॥
(अ० क०, पृ० २३)

विरमानन्दस्यालोचनात्मकया सांक्लेशिकरागनाश्यत्वान्निर्वाणरूपत्वम्। .... सुखविकल्पतया विशिष्टत्वाद्विरागो विरमानन्दः। (अ० क०, पृ० ६१)

---

१. हे० त० २.२.५०
२. च० को० व्या० पृ० ४

विश्वमाता

विश्वमाता सर्वाकारशून्यताज्ञानं त्र्यध्वदर्शनम्। (वि० प्र०, II.२०२)

विश्वराट्

विश्वं द्वासप्ततिनाडीसहस्रम्, तत्र सुखरूपेण राजत इति विश्वराट्।

(अ० क०, पृ० ४४)

विश्ववज्रधरः

अक्षोभ्यादिपञ्चतथागतस्वभावं लोचनादिपञ्चदेवीस्वभावं च वामदक्षिण-नासापुटे सञ्चारि धरति निश्चलीकरोति इति विश्ववज्रधरः।

(अ० क०, पृ० ५१)

विष्णुः

"[१]विनाशाद् (विषणाद्) विष्णुरुच्यते" मूत्रधातोरश्रावत्वात् स्वशरीरे विशना(षणा)द् विष्णुरुच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ५)

विंशत्याकारसंबोधिः

षडङ्गभावनया विशुद्धावधूतीविशुद्धत्वेन पञ्चस्कन्ध-पञ्चधातु-पञ्चेन्द्रिय-पञ्चायतनविशुद्ध्याकारावबोधाद् विंशत्याकारसंबोधिः।

(अ० क०, पृ० ८५)

वीतरागः

प्रभास्वरप्रवेशेन विगतप्राकृतरागतया महासुखानुभवाद् वीतरागः।

(अ० क०, पृ० ४०)

वीरबीभत्सम्

वीरमच्युतबोधिचित्तत्वात्। बीभत्समाकाशक्षयत्वेन रूपं महारागस्वरूपम्।

(अ० क०, पृ० ५)

---

१. हे० त० १.५.१३; सं० त० प्रथम पटल

उपायस्य करुणाङ्गत्वेन वीररसत्वम्, प्रज्ञायाः शून्यताङ्गत्वेन बीभत्सरसत्वम्, तद्द्वैधरूपं महासुखवीरबीभत्सरूपम्। (अ० क०, पृ० ७८)

वीरः

निरुत्तरवीर्ययोगाद् वीरो वज्रसत्त्वः। (म० त० टी०, पृ० १४)

महासुखचित्तरूपः सितबिन्दुर्वीरः। (म० त० टी०, पृ० १७)

वीरः श्रीहेरुकः। (म० त० टी०, पृ० २१)

सिंहो वीरः। (म० त० टी०, पृ० ३२)

वेशनम्

वेशनं समयमण्डलज्ञानमण्डलयोरेकीकरणम्। (कृ० त० टी०, पृ० १९)

वैराग्यम्

प्राकृतवैराग्यविगमेनाच्युतमहारागरूपत्वाद् वैराग्यं भगवानेव।
(अ० क०, पृ० ६९)

वैरोचनः

दुःखच्छेदो नाभिस्थो वैरोचनः। (अ० क०, पृ० १८)

प्रकृतिप्रभास्वरज्ञानं विरोचनः, स एव वैरोचनः। ..... विरोचते दीप्यत इति विरोचनः। (अ० क०, पृ० ४६)

वैरोचनो गज इति। (वि० प्र०, II.११७)

कामी वै मन्दगामी भवति खलु गजः पूतिगन्धोऽतिमूर्ख इति वैरोचनः।
(वि० प्र०, II.११८)

आदर्शज्ञानं रूपस्कन्धजनकं वैरोचनः। (वि० प्र०, II.१५८)

अत्र सद्यो वैरोचनः। (वि० प्र०, II.१८६)

गूथो वैरोचनः। (वि० प्र०, III.६९)

व्रतम्

व्रतं मौनस्नानभक्ष्यादिनियमः। (म० त० टी०, पृ० २७)

व्रतानि (पञ्च)

[१] हिंसाऽसत्यं परस्त्रीं त्यज स्वपरधनं मद्यपानं तथैव
संसारे वज्रपाशः स्वकुशलनिधनं पापमेतानि पञ्च ।

हिंसाऽसत्यं परस्त्रीं त्यज स्वपरधनं मद्यपानं तथैवेति पञ्चव्रतानि नियम इत्यर्थः। कस्मात् ? यतः संसारे वज्रपाशः स्वकुशलनिधनमिमानि पाप-कर्माणीति पञ्च, अतो न कर्तव्यानीति नियमः। (वि० प्र०, II.८८)

व्रतानि (पञ्चविंशद्)

[२] द्यूतं सावद्यभोज्यं कुवचनपठनं भूतदैत्येन्द्रधर्मं
गोबालस्त्रीनराणां त्रिदशनरगुरोः पञ्चहत्यां न कुर्यात् ।
द्रोहं मित्रप्रभूणां त्रिदशनरगुरोः संघविश्वासिनां च
आसक्तिस्त्विन्द्रियाणामिति भुवनपतेः पञ्चविंशद् व्रतानि ॥

.... तत्र द्यूतं सावद्यभोज्यं पूर्वोक्तं कुवचनपठनं भूतधर्मं पितृकार्यं यागकार्यं वेदोक्तम्। दैत्यधर्मं म्लेच्छधर्मं न कुर्यादित्युपपातकानि पञ्च। तथा पूर्वा-पराणां दशानामादिमां पञ्चहत्यां न कुर्यात् सर्वदा, गोहत्या बालहत्या स्त्री-हत्या पुरुषहत्या, त्रिदशनरगुरोरिति प्रतिमास्तूपादेर्विसंवादोऽपरा हत्येति। तथा मित्रद्रोहम्, प्रभुद्रोहम्, बुद्धद्रोहम्, संघद्रोहम्, विश्वस्तद्रोहमिति पञ्च न कुर्यादिति। तथा आसक्तिस्त्विन्द्रियाणामिति रूपासक्तिः, शब्दासक्तिः, गन्धासक्तिः, रसासक्तिः, स्पर्शासक्तिरिति। भुवनपतेर्वज्रसत्त्वस्य नियमेन

---

१. का० त० ३.९३
२. का० त० ३.९४

पञ्चविंशद् व्रतानि पालनीयानि शिष्यैरिति वज्राचार्येण देयानि सेककाले शिष्यायेति व्रतदाननियमः। (वि० प्र०, II.८८-८९)

शाक्यमुनिः

शाक्यमुनिः सम्यक् सम्बुद्धो महावैरोचनो वज्रधरः, यथोक्तं श्रीरिगि-अरल्लिमहातन्त्रे—

शुद्धोदनो महाराजा अरल्लिः संप्रकाशितः ।
रिगिस्तत्र महामाया प्रज्ञोपायात्मकं जगत् ॥
वज्रसत्त्वस्तु सिद्धार्थः परमानन्दो महासुखः ।

(अ० क०, पृ० ११)

शान्तः

इह सौख्येनानष्टेन बोधिचित्तस्य य एकक्षणः, स शान्त इत्युच्यते।

(वि० प्र०, II.२१२)

सहजसुखविहारित्वात् शान्तः। (अ० क०, पृ० १०६)

शान्तिः (देवता)

अकृत्रिमस्वसंवेद्यमहामुद्राप्रज्ञालोकरूपत्वाच्छान्तिः। (अ० क०, पृ० ६८)

सर्वकार्योपद्रवशमनाच्छान्तिः। (ख० त० टी०, २४०)

पूर्वदले सितवज्रबीजोद्भवा शान्तिः सितवर्णा। (ख० त० टी०, २४५)

शाश्वतः

सर्वरोमकूपाग्राकाशव्यापिबुद्धादिसंस्फरणरूपत्वात् शाश्वतः। प्रभास्वर-निष्ठतयाऽच्युतसुखत्वात् शाश्वतः। (अ० क०, पृ० ४४)

शास्ता

षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासानां महासुखाभिन्नत्वेन शासनात् शास्ता।
(अ० क०, पृ० ८)

शास्ता नानादुःखदुःखितानां महासुखोदयशासनात्। (अ० क०, पृ० ९१)

शिखण्डी

अनुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावेन ज्वलितसहजचण्डाली शिखा, तद्योगात् शिखी। चर्ममांसरक्तानि मातृसूर्यसम्बद्धानि। अस्थिस्नायुशुक्राणि पितृचन्द्रसम्बद्धानि। तद्द्वययोगः शिखण्डः, तस्य निरावरणयोगेन योगाच्छिखण्डी।
(अ० क०, पृ० ६६)

शिवः

"शिवः सदा सुकल्याणत्वात्[१]" इति। कल्याणमण्डलशीलं(ल)शुक्रस्य च्यवनाभावाद् बुद्धः शिव उच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ५)

शून्यताज्ञानस्वभावत्वात् सर्वतथागतज्ञानसत्त्वः शिवः। सदा सुकल्याणमिति कृत्वा अखण्डं शुक्रं शिवः। (अ० क०, पृ० ६८)

शिष्यः (द्विविधः)

इह मन्त्रनये शिष्यो द्विधा— एको महामुद्रासिद्धिसाधनार्थी, द्वितीयो लौकिकसिद्धिसाधनार्थी। यो महामुद्रासिद्धिसाधनार्थी, स शून्यतामार्गभावनार्थं सेकेन संग्राह्यः कलशगुह्यादिकेन। योऽसौ लौकिकसिद्धिसाधनार्थी, स मन्त्रमुद्रामण्डलचक्रभावनार्थं सप्ताभिषेकेण संग्राह्यो मध्यमः पुण्यहेतोरिति। अधमोऽभिषेकेण संग्राह्यो न भवति, स उपासकशिक्षया संग्राह्य इति नियमः। इह गम्भीरोदारधर्मे शून्यताकरुणात्मके चित्तं यस्य स गम्भीरोदारचित्त इति शिष्योत्तमः। (वि० प्र०, II.७)

---

१. हे० त० १.५.१३; सं० त० प्रथम पटल

शुक्रः

विशुद्धज्ञानरसः सितमुखद्रवरूपत्वेन शुक्रसाधर्म्यात् शुक्रशब्देनोक्तम्।

(म० त० टी०, पृ० १७)

शुद्धात्मा

महारागानलेन सकलस्कन्धधात्वायतनादीनां निरावरणीकरणात् शुद्धात्मा।

(अ० क०, पृ० ३७)

शून्यता

शून्यस्य भावः शून्यता, अतीतानागतं ज्ञेयं शून्यम्, तस्य दर्शनं भावः शून्यता। (अ० क०, पृ० ५४)

तथा चोक्तम्—

शून्यतां ये न जानन्ति न ते जानन्ति निर्वृतिम् ।
तस्माद्धि शून्यता ज्ञेया भावाभावविभावना ॥

उक्तं च—

शुभाशुभविकल्पानां सन्ततिच्छेदलक्षणा ।
शून्यता गदिता बुद्धैर्नान्यत्(न्या वै) शून्यता मता ॥

तथा चोक्तं—

१शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःशरणं जिनैः ।
येषां तु शून्यतादृष्टिस्तानसाध्यान् बभाषिरे ॥

(डा० जा० सं० र०, पृ० ९-१०)

शून्यस्वभावः शून्यता, इहातीतानागतं ज्ञेयं शून्यम्, तस्य दर्शनं भावः शून्यता, गम्भीरोदारा अतीतानागताभावाद् गम्भीरा, अतीतानागत-दर्शनादुदारा। तथाह—

१. म० शा० १३.८

[१]शून्यतावादी वृषभो गम्भीरोदारगर्जनः ।
धर्मशङ्खो महाशब्दो धर्मगण्डी महारणः ॥

अप्रतिष्ठितनिर्वाणो दशदिग् धर्मदुन्दुभिः ।
अरूपो रूपवानग्र्यो नानारूपमनोमयः ॥

सर्वरूपावभासश्रीरशेषप्रतिबिम्बधृक् ॥

(वि० प्र०, III.४८)

शून्यतागर्भः

सुखशून्याद्वयत्वेन शून्यतागर्भः। (अ० क०, पृ० ९९)

शून्यताभावना

निराभासस्य चित्तस्य स्थितिराकाशलक्षणा ।
आकाशभावनैवैषा शून्यताभावना मता ॥

(अ० क०, पृ० ४७)

शून्यतारतिः

सर्वधर्मस्वभावतथतावगमात्शून्यतारतिः। (अ० क०, पृ० ८०)

शून्यतावादी

कायवाक्चित्तनिरोधेन स्वसंवेद्यसुखप्राप्तिः शून्यता, तत्प्रकाशनात् शून्यता-वादी। (अ० क०, पृ० ५४)

शून्यम्

इहोत्पत्तिक्रमे प्रथमं शून्यताबोधिरिति प्राणिनां मरणान्ते स्कन्धपरित्यागाद् उपपत्त्यंशिकस्कन्धग्रहणाद्यदन्तरालं शून्यताक्षणमेकं त्रिभवदर्शनं शून्यम् इत्युच्यते। (वि० प्र०, II.२०८)

---

१. ना० सं० ८.२-३

शून्याविवेकः

आकाराणामस्तंगमाच्छून्यश्चासौ तत एव भेदानुपलक्षणादविवेकश्चेति शून्याविवेकः। (ख० त० टी०, पृ० २४०)

श्रवणम्

श्रवणमिति कुलिशास्फालनेन यत् क्षरं सुखम्। (डा० जा० सं० र०, पृ० २)

श्रीमान्

श्रीरद्वयं ज्ञानम्, तदनुभवरूपत्वेन तादात्म्येन नित्ययोगात् श्रीमान्। (अ० क०, पृ० २)

श्रीमानाकाशधातुपर्यन्तसहजानन्दरूपत्वात्। (अ० क०, पृ० १२)

श्रीमान् [अ]द्वैतज्ञानी। (अ० क०, पृ० ५२)

अद्वयस्वरूपपरमार्थसिद्धिश्रीयोगात् श्रीमान्। (अ० क०, पृ० ७१)

उष्णीषादुच्छलितबोधिचित्तधारया सर्वाङ्गाप्यायनेन लौकिकलोकोत्तर-सम्पत्तिमान् श्रीमान्। (अ० क०, पृ० ७८)

सर्वयोगिनां प्रियरत्नाच्युतत्वात् श्रीमान्। (अ० क०, पृ० ९६)

श्रीवज्री

श्रीवज्री सहजानन्दः परमाक्षरः। (वि० प्र०, II.२०२)

षट्कुलम्

[१]अथ शाक्यमुनिर्भगवान् सकलं मन्त्रकुलं महत् ।
मन्त्रविद्याधरकुलं व्यवलोक्य कुलत्रयम् ॥

---

१. ना० सं० ३.१-२

लोकलोकोत्तरकुलं लोकालोककुलं महत् ।
महामुद्राकुलं चाग्र्यं महोष्णीषकुलं महत् ॥
(अ० क०, पृ० १४)

षट् पारमिताः

[१]दानं त्यागो धनस्याच्युतिरपि मनसः स्त्रीप्रसङ्गाच्च शीलं
क्षान्तिः शब्दाद्यवेशो ह्युभयगतिविनाशोऽनिलस्यैव वीर्यम् ।
ध्यानं प्रज्ञा च चित्तं सहजसुखगतं सर्वगा सर्वभाषा
तस्याः सत्त्वार्थमृद्धिर्भवनिधनमजप्राप्तिरन्याश्चतस्रः ॥
(अ० क०, पृ० २५; वि० प्र०, II.२१६)

षडक्षरः

षट्चक्रेष्वक्षरसुखवेदनात् षडक्षरः। (अ० क०, पृ० ५३)

षडङ्गयोगः

तत्र चादौ निश्छिद्रगृहे गुहायां षडङ्गयोगमभ्यसेदिति। षडङ्ग श्चात्र—

[२]प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गो योग इष्यते ॥
(अ० क०, पृ० ३०; वि० प्र०, II.२०७)

इह प्रत्याहार आदिकर्मणि जिनेन्द्र इति ज्ञानस्कन्धः। स च निमित्तभेदेन दशविधो धूममरीचिखद्योतदीपज्वालाचन्द्रादित्यराहुकलाबिन्दुदर्शनभेदेना-कल्पितो ज्ञानस्कन्धः। ध्यानमक्षोभ्य एव दशविधो विज्ञानस्कन्धः, विषय-विषयिणां दशानामेकत्वं विश्वबिम्बे ध्यानमिति। प्राणायामश्च दशविधः।

---

१. का० त० ४.१२८
२. गु० त० १८.१४०

खड्गीति संस्कारस्कन्धः, वामदक्षिणमण्डलैकलोलीभूतत्वाद् इति। पुनरपि दशधा धारणा रत्नपाणिरिति वेदनास्कन्धः। प्राणस्य धारणा नाभिहृत्कण्ठ-ललाटोष्णीषकमले गतागतभेदेन दशविध इति। डोम्ब्यां चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधर इति संज्ञास्कन्धो दशविधः। स चानुस्मृतिर्डोम्ब्यां मध्यनाड्यां दशकामावस्थाभेदत इति। श्रीसमाधिश्चक्रीति वैरोचनो दशविधः। समाधि-र्दशवायूनां निरोधत इति। (वि० प्र०, II.२०९)

षडनुस्मृतिः

षट्चक्रसमाधिप्रविष्टदानादिपारमिताधारणास्मरणरूपत्वात् षडनुस्मृतिः।

(अ० क०, पृ० ९२)

बुद्धानुस्मृतिः, धर्मानुस्मृतिः, संघानुस्मृतिः, त्यागानुस्मृतिः, शीलानुस्मृतिः, देवतानुस्मृतिश्चेति। (वि० प्र०, III.१४९)

षडुपरसाः

तत उपरसाः काक्षिकमिति ज्ञानधातुस्वभावम्, कासीसमाकाशस्वभावम्, गन्धकं वायुधातुस्वभावम्, मनःशिला वह्निस्वभावा, तालकं तोयस्वभावम्, गैरिका भूमिस्वभावेति षडुपरसाः। (वि० प्र०, III.१३२)

षड्देव्यः

वाराही-यामिनी-मोहनी-सञ्चारिणी-संत्रासिनी-चण्डिकानां षड्देवीनां मन्त्रैः स्वस्वदेवतावन्नैरात्म्येन कवचयेत्। (अ० म०, पृ० १०)

षोडश रूपाः (धातवः)

ब्रह्मकायिका ब्रह्मपुरोहिता महाब्रह्माणः परीत्ताभा अप्रमाणाभा आभा-स्वराः परीत्तशुभा अप्रमाणशुभाः शुभकृत्स्ना अनभ्रकाः पुण्यप्रसवा बृहत्-फला अबृंहा अतपाः सुदर्शना अकनिष्ठाः षोडशरूपाः। (वि० प्र०, III.८५)

षोडशाकारतत्त्ववित्

षोडशानन्दकलां शुक्रनिरोधेन षोडशाकारतत्त्वं वेत्तीति तथा। सांसारिक-षोडशकला[क्षयतोऽ]क्षरत्वात् षोडशाकारतत्त्ववित्। (अ० क०, पृ० ८५)

सत्त्वानुस्मृतिभावना

यच्चित्तं सर्वसत्त्वानां कायवाक्चित्तलक्षितम् ।
ममापि तादृशं चित्तं आकाशसमसारिणम् ॥

(गु० स०, ७.३१)

सत्यद्वयम्

संवृतिसत्यं मायोपमं स्वाधिष्ठानलक्षणम्, परमार्थसत्यं प्रभास्वरपरिज्ञानम्, तत् सत्यद्वयम्। (अ० क०, पृ० ४०)

तथा हि—

[१]सत्यद्वयं समाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।
लोकसंवृतिसत्येन सत्येन परमार्थतः ॥

इति भगवतो नियमः। (वि० प्र०, II.२१२)

सदोत्तमः

सदोत्तम उत्तमा प्रधानदेवी सदा संयुक्तास्मिन्निति सदोत्तमः।

(ख० त० टी०, २४०)

सद्धर्मः

संश्चासौ सद्गुरूपदेशलभ्यत्वाद् धर्मश्च एवंकाररूपः। सुखस्वलक्षणधारणात् सद्धर्मः। (अ० क०, पृ० ४१)

---

१. म० शा० २४.८

सद्योजातः

अत्यन्तश्रद्धावतां हृदि गुरूपदेशक्षणमात्रेण बुद्धरूपेण जातत्वात् सद्योजातः। तदुक्तम्— "तत्तु क्रमेण करुणादिगुणावदातश्रद्धावतां हृदि पदं स्वयमादधाति" इति। (अ० क०, पृ० ४५)

सप्त क्षणाः

मध्यरागो विस्मृतिर्भ्रान्तिस्तूष्णीं खेद आलस्यं धन्धत्वमिति सप्तक्षणा आलोकोपलब्धिज्ञानस्य। (अ० क०, पृ० ८६)

सप्त बोध्यङ्गानि

सप्तबोध्यङ्गानि— स्मृतिसम्बोध्यङ्गम्, धर्मप्रविचयसम्बोध्यङ्गम्, वीर्यसम्बोध्यङ्गम्, प्रीतिसम्बोध्यङ्गम्, प्रस्रब्धिसम्बोध्यङ्गम्, समाधिसम्बोध्यङ्गम्, उपेक्षासम्बोध्यङ्गम्। (वि० प्र०, III.१४९)

समाधिरेव संबोधेः कारणम्। समाधिसंबोध्यङ्गं हयकर्णा। कौशीद्यानवकाशो वीर्यसंबोध्यङ्गं खगानना। कुशलेषूत्साहः प्रीतिसंबोध्यङ्गं चक्रवेगा। कुशलकर्मणि कर्मण्यता प्रस्रब्धिसंबोध्यङ्गं खण्डरोहा। नैरात्म्यस्वरूपेणावधारणा धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्गं शौण्डिनी। अविस्मरणशीलता स्मृतिसंबोध्यङ्गं चक्रवर्मिणी। समाधावमनसिकारोपेक्षासंबोध्यङ्गं सुवीरा।

(अ० म०, पृ० १७)

सप्त महारसाः

इह माक्षिकं महारसं भूमिस्वभावम्, चकारान्महारसम्, विमला तोयस्वभावा, तुत्थकं वह्निस्वभावम्, चपलो वायुस्वभावः, रसकः शून्यस्वभावः, शशको हिङ्गुल[श्च] ज्ञानधातुस्वभाव इति महारसाः सप्त।

(वि० प्र०, III.१३२)

सप्त लोकाः

पातालं भूः स्वर्गः प्रथमं ध्यानं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थमिति सप्तलोकाः।

(म० त० टी०, पृ० ३२)

सप्तविधा पूजा

सप्तविधा पूजा— वन्दना, पूजना, देशना, अनुमोदना, अध्येषणा, याचना, परिणामना चेति। (वि० प्र०, III.१४९)

समन्तचर्या

सर्वचित्तेषु या चर्या समन्तचर्येति कथ्यते ।

(गु० स०, १८.६९)

समन्तभद्रः

धूमादिनिमित्तस्फुटीभावेन समन्ततो भद्रं सहजानन्दं ज्ञानं यस्य स तथा।

(अ० क०, पृ० ७६)

समयचतुष्टयम्

कायवाक्चित्तज्ञानात्मकं समयचतुष्टयम्। ...... तदुक्तं वज्रपादैः— "प्रज्ञाचुम्बनेनानन्दक्षणो भवति, स च कायसमयः। पद्मे वज्रप्रवेशेन परमानन्दक्षणो वाक्समयः पद्मे वज्रस्फालनेन विरमानन्दक्षणश्चित्तसमयः। वज्रमणौ बोधिचित्तेनागतेन सहजानन्दक्षणो ज्ञानसमयश्चतुर्थः"। (अ० क०, पृ० ६५)

मद्यमांसमैथुनामृतभक्षणमिति समयचतुष्टयम्। (वि० प्र०, II.१२०)

समयविशुद्धिः

इदानीं पीठादिभिः समयविशुद्धिरुच्यते— विण्मूत्रं रक्तमांसमिति सकलसत्त्वानां विविधानां तनुगतं पीठभेदे चतुष्कम्। कर्णौ नासाक्षिजिह्वा गुदं भगमिति षट्कम् क्षेत्रभेदे भवति। तथा पूयः श्लेष्मा यूका कृमिर्लसिवसालोमकेशा इत्यष्टौ छन्दोहभेदाः। तथाऽन्त्रं पित्तम् अस्थीनि मज्जा कालजं

फुफ्फुसं नाडी चर्माणि बुक्कं मेद इति दशकं मेलापकस्य भेदाः। .... तथा कर्णमलं घ्राणमलम् अक्षिमलं जिह्वामलं भगमलं गुदमलं लिङ्गमलं कक्ष-मलमष्टाङ्गमलमित्यष्टौ श्मशानप्रभेदाः। तथा बाह्ये लोकधातौ पीठादि-विशुद्ध्या समया उच्यन्ते— इह कालाग्निः, इन्दुः, अर्कः, राहुः पीठभेदे समयचतुष्कं लोचनादीनाम्। भौमः सौम्यश्च मन्त्री भृगुः शनिः फणीति केतुः— एते रूपवज्रादीनां क्षेत्रभेदसमयाः। तथा पृथ्वी तोयं तेजो वायुः क्षितिजा सलिलजा वह्निजा वातजाश्च, इत्यष्टौ स्थावरजङ्गमा भूताश्छन्दोह-भेदे भूतजानां समया इति। पुनरपि च तथा षड्रसाः, गन्धः, वर्णः, शब्दः, स्पर्श इति दश मेलापकस्य प्रभेदाः क्रोधजानामिति। पृथिव्यादीनां चतुष्कं वर्णादीनामपि क्षयः श्वासनिःश्वासाभ्यामिति श्मशानस्य प्रभेदा आसुरीणां अष्टौ समया इति पीठादिबाह्याभ्यन्तरसमयविशुद्धिनियमः।

(वि० प्र०, II.१२६-१२७)

समयः

समयानिति गोकुदहनादीनि। (कृ० त० टी०, पृ० ४४)

समयमनुल्लङ्घनीयत्वात्। (कृ० त० टी०, पृ० ८८)

पूर्वमपि समयसेवाभिधानात् पुनर्यद् वचनं तस्यायमर्थः— रक्ष्यो भक्ष्यश्चैव तद् द्विधा समयः। पूर्वं भक्ष्यसमयस्योक्तत्वाद् रक्ष्यसमयाभिप्रायेणेदम्। ...... समयमिति समयद्रोहः। .....समय इति गोकुदहनादिसेवनम्।

(कृ० त० टी०, पृ० १३१)

समयं विश्वसङ्काशाभिमुखं कर्मजं फलम्। (गु० स०, १८.४८)

असुरकन्यासमयः

क्रूरा मानभराक्रान्ता गन्धपुष्पोपभोगजाः ।
समयो वज्रपात्रालिः दुर्दान्ता वज्रभैरवाः ॥

(गु० स०, १७.२२)

कायसिद्धिसमयवज्रः

कायिकं त्रिविधं सर्वं कारयेद्वज्रसम्भवम् ।
बुद्धकार्यकरं नित्यं सत्त्वधातोः समन्ततः ॥

(गु० स०, १७.२६)

खविद्याधरसमयः

कायवाक्चित्तवज्राणां मुकुटे ध्यानं विचिन्तयेत् ।
त्रिवज्रसमयैः सर्वैः क्रुद्धैर्जेतुं न शक्यते ॥

(गु० स०, १७.३४)

चित्तवज्रसमयः

यावन्तः सर्वसमयास्त्रिवज्रकायसंस्थिताः ।
प्रीणयन्ति वज्रसमयैश्चित्तवज्रं न जुगुप्सयेत् ॥

(गु० स०, १७.४९)

चित्तसिद्धिवज्रसमयः

मनोवज्रमयं सर्वं भावयेद् दृढवज्रधृक् ।
एषो हि समयः प्रोक्तस्त्रिवज्राभेद्यवज्रिणाम् ॥

(गु० स०, १७.२८)

त्रिवज्रसमयः

कायवज्रो भवेद् ब्रह्मा वाग्वज्रस्तु महेश्वरः ।
चित्तवज्रधरो राजा सैव विष्णुर्महर्द्धिकः ॥

(गु० स०, १७.१९)

प्रत्येकबुद्धसमयवज्रः

देशना कायिकी तेषां कायवज्रप्रतिष्ठिता ।
सत्त्वावतारणं शीलसमयः परमशाश्वतः ॥

(गु० स०, १७.१४)

ब्रह्मसमयः

मोहमात्रेण यत्कर्म करोति भयभैरवम् ।
बुद्धबोधिप्रणेतारं भवते कायवज्रता ॥

(गु० स०, १७.१६)

राक्षसस्त्रीसमयः

कपालास्थिधूपतैलवसया प्रीणनं महत् ।
समयः सर्वभूतानां पवित्रोऽयं महार्थकृत् ॥

(गु० स०, १७.२३)

रुद्रसमयः

त्रैधातुकस्थितां सर्वामङ्गनां सुरतविह्वलाम् ।
कामयेद् विविधैर्भावैः समयः परमाद्भुतः ॥

(गु० स०, १७.१७)

वज्रधरचित्तवज्रसमयः

समयचतुष्टयं रक्ष्यं वज्रसत्त्वैर्महर्द्धिकैः ।
रुधिरं शुक्रसंयुक्तं सदा भक्ष्यं दृढव्रतैः ॥

कायवाक्चित्तवज्राणां समयोऽयं महाद्भुतः ।
शाश्वतं सर्वबुद्धानां संरक्ष्यो वज्रधारिभिः ॥

यश्चेमं समयं रक्षेद् वज्रसत्त्वो महाद्युतिः ।
कायवाक्चित्तगतं तस्य बुद्धो भवति तत्क्षणात् ॥

(गु० स०, १७.११-१३)

वाक्सिद्धिसमयः

वाक्यकर्मकृतं कृत्स्नं त्रैलोक्यामलमण्डलम् ।
वाक्सिद्धिपदरम्योऽयं समयो दुरतिक्रमः ॥

(गु० स०, १७.२७)

वाग्वज्रसमयः

त्रैधातुकपथे रम्ये यावन्त्यो योषितः स्मृताः ।
कामयेद् विधिवत् सर्वा वाग्वज्रैर्न जुगुप्स्यते ॥

(गु० स०, १७.४८)

विष्णुसमयः

यावन्तः सत्त्वसंभूतास्त्रिवज्राभेद्यसंस्थिताः ।
मारयेद् ध्यानवज्रेण वज्रधातुमपि स्वयम् ॥

(गु० स०, १७.१८)

श्रावकशिक्षासमयः

दशकुशलान् कर्मपथान् कुर्वन्ति ज्ञानवर्जिताः ।
हीनाधिमुक्तिकाः सर्वे समयोऽयं महाद्भुतः ॥

(गु० स०, १७.१५)

सर्वतथागतकायवाक्चित्तवज्रध्यानसमयः

वज्रसत्त्वस्य सर्वत्र कायवाक्चित्तमण्डले ।
ध्यानं त्रिवज्रयोगेन ध्यातव्यं मन्त्रजापिना ॥

(गु० स०, १७.३०)

सर्वबुद्धकायवज्रसमयः

समयचतुष्टयं रक्ष्यं बुद्धैर्ज्ञानोदधिप्रभैः ।
महामांसं सदा भक्ष्यमिदं समयमुत्तमम् ॥

(गु० स०, १७.९)

सर्वबुद्धवाग्वज्रसमयः

समयचतुष्टयं रक्ष्यं वाक्यवज्रमहाक्षरैः ।
विण्मूत्रं च सदा भक्ष्यमिदं गुह्यं महाद्भुतम् ॥

(गु० स०, १७.१०)

सर्वबुद्धसमयः

विण्मूत्रशुक्ररक्तानां जुगुप्सां नैव कारयेत् ।
भक्षयेद् विधिना नित्यमिदं गुह्यं त्रिवज्रजम् ॥

(गु० स०, १७.४७)

सर्वभुजगेन्द्रराज्ञीसमयः

पैशुन्यक्षीरिताहाराः कामगन्धपराश्च ताः ।
साधयेत् समयैरेभिरन्यथा क्लिश्यते ध्रुवम् ॥

(गु० स०, १७.२१)

सर्वमन्त्रधरादिकर्मिकसमयः

भजने कायवज्रस्य बहिर्वज्रधरस्य च ।
वज्रधर्मैः सदा कार्या सूत्रोद्घाटविधिक्रिया ॥

(गु० स०, १७.३५)

सर्वमन्त्रवज्रसाधनसमयः

सत्त्वधातुं समासेन ध्यानवज्रेण चोदयेत् ।
त्रिवज्रवन्दनाग्राग्र्यः समयो वज्रसम्भवः ॥

(गु० स०, १७.३१)

सर्वमन्त्रवज्रसारसमयः

बुद्धांश्च बोधिसत्त्वांश्च प्रत्येकश्रावकांस्तथा ।
कायवाक्चित्तसंयोगैर्वन्दयन् नाशमाप्नुयात् ॥

(गु० स०, १७.२९)

सर्वयक्षयक्षिणीसमयः

असृक्पिशिताहारा नित्यं कामपराः स्त्रियः ।
आराधयेन्महावज्रसमयैरेभिर्दुरासदैः ॥

(गु० स०, १७.२०)

सर्ववज्रडाकिनीसमयः

विण्मूत्ररुधिरं भक्षेद् मद्यादींश्च पिबेत् सदा ।
वज्रडाकिनीयोगेन मारयेत् पदलक्षणैः ॥

स्वभावेनैव संभूता विचरन्ति त्रिधातुके ।
आचरेत् समयं कृत्स्नं सर्वसत्त्वहितैषिणा ॥

(गु० स०, १७.२४-२५)

सर्ववज्रान्तर्धानसमयः

कामयेत् प्रतिदिनं वज्री चतुःसन्ध्यं यथोत्तमम् ।
द्रव्यं चोपाहरेन्नित्यं समयो वज्रपूरकः ॥

(गु० स०, १७.३३)

सेवासाधनोपसाधनमहासाधनसमयः

खधातुं विण्मूत्रवज्रेण परिपूर्णं विचिन्तयेत् ।
दद्यात् त्रियध्वबुद्धेभ्यः समयः परमशाश्वतः ॥

(गु० स०, १७.३२)

समयाक्षरम्

समयाक्षरेणेत्युत्पादितबोधिचित्तेन। (कृ० त० टी०, पृ० ९१)

समयानुस्मृतिभावना

स्ववज्रं पद्मसंयुक्तं द्वयेन्द्रियप्रयोगतः ।
स्वरेतोबिन्दुभिर्बुद्धान् वज्रसत्त्वांश्च पूजयेत् ॥

(गु० स०, ७.२६)

समयाक्षरेन्द्रविधिना विधिवत् फलकाङ्क्षिणः।
मानयेत् ताथागतं व्यूहं सुतरां सिद्धिमाप्नुयात्॥

(गु० स०, ७.३३)

समाजम्

समाजं मीलनं प्रोक्तं सर्वबुद्धाभिधानकम् ।

(गु० स०, १८.२४)

समाधिकायः

समाधिकायो धर्मकायोऽयमेव सम्भोगनिर्माणकाययोरग्रो यस्य स तथा।

(अ० क०, पृ० ९०)

समाधिचतुष्टयम्

शूरङ्गमगगनगञ्जविमलमुद्रसिंहविक्रीडितसमाधिचतुष्टयविशुद्ध्या चतुर्देवी-परिक्षिप्तम्। (अ० म०, पृ० ७)

समाधिः

..... अनेन समाध्यङ्गमुक्तम्। तथा चोक्तम्—

१श्रीसमाधिश्च चक्री।

वैरोचनो दशविधः। समाधिर्दशवायूनां निरोध इति। एवं भगवानप्रतिष्ठितनिर्वाणोऽवाहिवायूनां जात इति। पुनश्चोक्तम्—

२प्रज्ञोपायात्मकेनाक्षरसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिः ॥ इति।

(अ० क०, पृ० ३२)

अचिन्त्यरूपत्वात् समाधिः। (अ० क०, पृ० १०६)

समाधिर्नाम इष्टदेवतानुरागाद् यदक्षरसुखप्राप्तिस्तस्यामेकीकरणम्। ग्राह्य-ग्राहकताविरहितं चित्तं समाध्यङ्गमुच्यते तथागतैः।

(डा० जा० सं० र०, पृ० ६)

---

१. का० त० ४.११५
२. का० त० ४.११७

प्रज्ञोपायसमापत्त्या सर्वभावान् समासतः ।
संहृत्य पिण्डयोगेन बिम्बमध्ये विभावनम् ॥

झटिति ज्ञाननिष्पत्तिः समाधिरिति संज्ञितः ।
(गु० स०, १८.१५३-१५४)

समाधिवसितामात्रे निरावरणवान् भवेत् ।
(गु० स०, १८.१५६)

प्रज्ञोपायात्मकेनेति ज्ञेयज्ञानैकलोलीभूतेन। अक्षरणसुखवशाज्ज्ञानबिम्बे समाधिश्चेति। सापि दशविधा प्राणादीनामभावत इति।

इह ग्राह्यग्राहकचित्तयोरेकत्वेन यदक्षरसुखं भवति, तत्सुखं समाधिरुच्यते। तस्मात् समाधिशुद्धो वैमल्यं गतः कतिपयदिवसैस्त्रिवर्षत्रिपक्षदिवसैः सिद्ध्यते ज्ञानदेह इति। दशवशितादिकं प्राप्तो बोधिसत्त्वो भवतीति प्रत्याहारादिनियमः। (वि० प्र०, II.२११)

समुदागमः

अनाभोगेनाधिगमरूपत्वात् समुदागमः। (अ० क०, पृ० १०६)

सम्बुद्धवज्रम्

सम्बुद्धवज्रं प्रबुद्धकुलिशाग्रम्। (अ० क०, पृ० ७४)

सम्बुद्धः

सम्बुद्धं प्रबुद्धसुखम्। (अ० क०, पृ० ७)

सहजसुखोल्लासेन सर्वधर्मविबोधात् संबुद्धः। (अ० क०, पृ० ७)

उष्णीषादिषट्चक्रेषु ज्ञानकायावबोधात् संबुद्धः। (अ० क०, पृ० ११)

मणिवरटकस्थितशुक्रत्वेन नित्यप्रबुद्धवज्रत्वेन सम्बुद्धः। (अ० क०, पृ० २०)

षण्मण्डलाधिपतित्वात् सम्बुद्धः। (अ० क०, पृ० ९२)

सम्भोगदेहः

यथा चित्रपटो दर्पणमध्ये उपलक्षितः, तथैव शाताकारः सम्भोगदेहो ज्ञातव्यः। उक्तं च —

[१]द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ताऽशीत्यनुव्यञ्जनी प्रभुः।
योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः ॥ इति।

(अ० क०, पृ० २३)

सम्यक्संबुद्धबोधिः

वज्ररत्नान्तर्गतं चित्तं सम्यक्संबुद्धः, तस्य बोधिसुखज्ञानम्।

(अ० क०, पृ० ७७)

सर्वज्ञज्ञानकोशः

सर्वाकारात्मकं स्वसंवेद्यज्ञानम्, सर्वज्ञज्ञानं तदेव कोशः सर्वधर्माणाम्।

(अ० क०, पृ० ७४)

सर्वज्ञः

ज्ञानरूपेण सर्वधर्माणां संस्थापनात् सर्वज्ञः। (अ० क०, पृ० ६९)

लौकिकसिद्धयः सर्वज्ञगुणदायिका न भवन्ति, प्रादेशिकवचनात्, सर्वज्ञ-भाषाऽभावात्, सावरणकायऋद्धिसंदर्शनात्। सावरणे धर्मे साक्षात्कृते योगी सर्वज्ञो न भवति। तस्मान्निरावरणे धर्मे साक्षात्कृते सति योगी सर्वज्ञो भवति, निरावरणधर्मलक्षणात्। सर्वज्ञस्य दिव्यं चक्षुर्दिव्यं श्रोत्रं परचित्तज्ञानं पूर्वनिवासानुस्मृतिः सर्वगर्द्धिः सर्वास्रवक्षयः स्थानास्थानज्ञानबलं कर्म-विपाकज्ञानबलम् एकानेकधातुज्ञानबलम् इन्द्रियपरापरज्ञानबलं नानाधि-

---

१. हे० त० २.२.४१

मुक्तिबलं दुःखनिरोधधर्मगामिनीप्रतिपज्ज्ञानबलं संक्लेशव्यवदानज्ञानबलम् अनेकजन्मावदानज्ञानबलं सर्वाभिज्ञाज्ञानबलम् आस्रवक्षयज्ञानबलं भवतीति इति। तथा समन्तप्रभा महासूर्यमण्डलवर्चसा भूमिः, अमृतप्रभा महाचन्द्रप्रभास्वरा भूमिः, गगनप्रभा गगनवत्सुप्रतिष्ठिता भूमिः, वज्रप्रभा मनोरमा भूमिः, रत्नप्रभा अभिषेकप्रतिष्ठिता भूमिः, पद्मप्रभा स्वभावशुद्धधर्मनिर्मला निष्परिग्रहा भूमिः, बुद्धकर्मकरी भूमिः, अनुपमा भूमिः, उपमा सर्वोपमा प्रतिवेधतो(धिता) भूमिः, प्रज्ञाप्रभाऽनुत्तरा भूमिः, सर्वज्ञता महाप्रभास्वरा भूमिः, प्रत्यात्मवेद्या योगिज्ञानप्रपूरिका भूमिरिति। तथागतस्य नास्ति स्खलितम्, नास्ति नदितम्, नास्ति मुषिता स्मृतिः, नास्त्यसमाहितं चित्तम्, नास्ति नानात्वसंज्ञा, नास्त्यप्रतिसंख्योपेक्षा, नास्ति छन्दस्य परिहाणिः, नास्ति वीर्यस्य परिहाणिः, नास्ति स्मृतेः परिहाणिः, नास्ति समाधेः परिहाणिः, नास्ति प्रज्ञायाः परिहाणिः, नास्ति मुक्तिज्ञानदर्शनस्य परिहाणिः। अतीतेऽध्वन्यप्रतिहतमसङ्गमप्रणिहितं ज्ञानं दर्शनं च प्रवर्तते, अनागतेऽध्वन्यप्रतिहतमसङ्गतमप्रणिहितं ज्ञानं दर्शनं प्रवर्तते, प्रत्युत्पन्नेऽध्वन्यप्रतिहतमसङ्गमप्रणिहितं ज्ञानं दर्शनं प्रवर्तते। सर्वं कायकर्म ज्ञानपूर्वङ्गमं ज्ञानानुपरिवर्ति, सर्वं वाक्कर्म ज्ञानपूर्वङ्गमं ज्ञानानुपरिवर्ति, सर्वं मनस्कर्म ज्ञानपूर्वङ्गमं ज्ञानानुपरिवर्तीति। अतः सर्वत्र सर्वकालं समतायां सुप्रतिष्ठितः शून्यतायां समनुगत्वात् प्रज्ञापरिशुद्धस्तथागतो भवति, निरावरणलक्षणात्। (वि० प्र०, III.६७-६८)

मारक्लेशापत्तिज्ञेयावरणक्षयात् सर्वाकारऋद्धिस्फरणसिद्धिदर्शनाद् धर्मचक्रप्रवर्तनात् सर्वज्ञभाषया सकलधर्मस्कन्धसमूहदेशनावशात् सर्वज्ञो भवतीति।

(वि० प्र०, III.७४)

सर्वबुद्धसरस्वती

सर्वबुद्धानां कायवाक्चित्तानां महासुखामृतप्रवाहनिमज्जनाधारमहासुखपूर्णाचिन्त्यनदीरूपत्वात् सर्वबुद्धसरस्वति। आर्षत्वाल्लिङ्गव्यत्ययः सर्वबुद्धमयी सरस्वती अचिन्त्यसुखा नदी यस्य स तथा ह्रस्वत्वम्।

(अ० क०, पृ० ७३)

सर्वमन्त्रमूर्तिकायवाक्चित्तानुस्मृतिभावना

यत्कायं मन्त्रवज्रस्य वाचा कायविभावनम् ।
ममापि तादृशं चित्तं भवेन्मन्त्रधरोपमम् ॥

(गु० स०, ७.३२)

सर्ववित्

अनाभोगेन सर्वसत्त्वचित्तचरितपरिज्ञानात् सर्ववित्। (अ० क०, पृ० ६९)

सर्वबुद्धमयभावग्रामावबोधनात् सर्ववित्। (अ० क०, पृ० ८५)

सर्वः

अशेषभावस्वभावसंदर्शनात् सर्वः। (अ० क०, पृ० ९३)

"[१]सर्वः सर्वात्मनि स्थिति(तः)" इति। सर्वो रत्नसंभवः, स एव रक्तधातुः, तस्य च्यवनाभावाद् दुःखस्याभावः। ..... सर्वात्मनि स्थितो दिव्यचक्षुषा परचित्तज्ञानव्यापकत्वाद् बुद्धः सर्व उच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० ५)

सर्वाकारः

प्रत्याहारेण यो दृष्टो भावो घटादिकः प्रतिसेनातुल्यप्रतिभासः सर्वाकारः।

(अ० क०, पृ० ९०)

संग्रहवस्तूनि (चत्वारि)

ततश्चत्वारि संग्रहवस्तूनि चिन्तयेत्— दानं प्रियवाक्यमर्थचर्यां समानार्थतामिति। (वि० प्र०, II.१५३)

संग्रहः

इहालयविज्ञानस्य मातृगर्भे शुक्रबिन्दूनां ग्रहणं नाम संग्रहः।

(वि० प्र०, II.२०८)

---

१. हे० त० १.५.१३; सं०त० प्रथम पटल

संभारद्वयम्

इह प्रथमं सप्ताभिषेकदानप्रवृत्त्यर्थं मन्त्रजापमण्डलभावनार्थम्, तेन पुण्य-संभारः, तस्मात् पुण्यसंभारहेतोः सप्ताभिषेका देया इति। अहिंसादि-पञ्चविंशद् व्रतानि देयानि, ततो ज्ञानसम्भारार्थमुत्तराभिषेकत्रयं देयम्। स्वमांसादीष्टतरदानाद्यर्थं सर्वाकारवरोपेतशून्यताभावनार्थं बोधिचित्ताक्षरार्थं तेन ज्ञानसंभारः, तस्माज्ज्ञानसंभारहेतोरुत्तराभिषेका देयाः, ते च चतुर्था-भिषेकेण सहिताः। चतुर्थ उपदेशेन वक्तव्य इति भगवतोऽभिषेकनियमः।

(वि० प्र०, II.८-९)

संवरः

संवरस्तीव्ररागस्यापि गृहिणो ब्रह्मचर्यम्। (म० त० टी०, पृ० १३)

संवृतिः

महाद्भुतेषु धर्मेषु आकाशसदृशेषु च ।
निर्विकल्पेषु शुद्धेषु संवृतिस्तु प्रगीयते ॥

(गु० स०, ९.२३)

संसारः

सम्यक् सारः संसारः। (अ० क०, पृ० ४१)

पञ्चोपादानस्कन्धाः संसारः। (अ० क०, पृ० ५८)

स्वचित्तवासनामात्रोऽयं संसारः। (वि० प्र०, III.८३)

साधनम्

कायवाक्चित्तवज्रेणाद्वयीकरणसाधनम्। (गु० स०, १८.१७२)

साधने देवतायोगं कुर्यान्मन्त्री विधानवित् ॥ (गु० स०, १८.१७४)

साधनं चालनं प्रोक्तं हूँफट्कारसमन्वितम् ॥ (गु० स०, १८.१७८)

इहानन्दे त्रिवज्राः कायवाक्चित्तबिन्दवोऽब्जसमरसगता भावना साधनं स्यात्। हृन्नाभिगुह्ये बिन्दूनां स्थितिरित्यर्थः। एवं साधनम्।

(वि० प्र०, II.२०८)

सामान्यसेवा

वज्रचतुष्केण सामान्यम्। (गु० स०, १८.१३६)

सिद्धः

मण्डलचक्रस्फारिताकाशगमनात् सिद्धः। (वि० प्र०, III.७४)

सिद्धान्तः

सदसत्पक्षविगमेन परमनिष्ठारूपत्वेन सिद्धान्तः। (अ० क०, पृ० ८७)

सिद्धार्थः

सर्वधर्माणां ज्ञानाकारेण प्रतिभासकत्वात् सिद्धो निष्पन्नोऽर्थः परमार्थो यतो यस्य वा स तथा। (अ० क०, पृ० ४२)

सिद्धिः

इयं रसादिसिद्धिः सामान्यखड्गादिसिद्धिर्विद्याधरसिद्धिश्च। कर्ममुद्रासिद्धिर्ज्ञानमुद्रासिद्धिश्च मध्यमा। एतयोरुत्तमा स्वपरहिता परमज्ञानसिद्धिः प्रज्ञाबिम्बभावनया। साऽपि येन या सिद्धिर्भवति पुंसां स्वकृतशुभवशात् तत्र वासना भवति नैकजन्मानुवेधात्। (वि० प्र०, III.१४४)

सिद्धिः (द्विविधा)

अन्तर्द्धानादयः सिद्धाः सामान्या इति कीर्तिताः ।
सिद्धिरुत्तममित्याहुर्बुद्धा बुद्धत्वसाधनम् ॥

(गु० स०, पृ० १८.१३३)

सुखम्

अचलं सुखं नाम सर्वभावेभ्यः सुखसम्पत्तिः। (डा० जा० सं० र०, पृ० ६)

सुखं द्वीन्द्रियजं तत्त्वं बुद्धत्वफलदायकम् ।
नरा वज्रधराकारा योषितो वज्रयोषितः ॥

(वि० प्र०, II.२१५)

सुगतः

अनासंगसुखतया संसारसुखात् प्रशस्तमपुनरावृत्त्या यावद् गन्तव्यतया गतः सुगतः। (अ० क०, पृ० ४०)

सुमतिः

सर्वविकल्पाभावेन सम्बोधिप्राप्तत्वेन शून्यताकारा शोभना मतिर्यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० ७६)

सुरगुरुः

निःस्वभावी(वि)सर्वधर्मप्रकाशनेन बृहस्पतिस्वभावत्वात् सुरगुरुः।

(अ० क०, पृ० ९१)

सुरेन्द्रः

रत्नान्तरुष्णीषगमनेन बलिरूपत्वात् सुरेन्द्रः। (अ० क०, पृ० ९१)

सुषमा (देवता)

सर्वबुद्धधर्मरतिप्रापणात् सुषमा। (ख० त० टी०, २४०)

पश्चिमदले रक्तवज्रबीजोद्भवा सुषमा पद्मरागवर्णा। (ख० त० टी०, २४५)

सूक्ष्मयोगः

[१]श्रीसमाजेऽप्युक्तम्—

आकाशधातुमध्यस्थं भावयेच्चन्द्रमण्डलम् ।
बुद्धबिम्बं भावयित्वा सूक्ष्मयोगं समारभेत् ॥

१. गु० त० ६.८-९

नासाग्रे सर्षपं चिन्तयेत् सर्षपे सचराचरम् ।
भावयेज्ज्ञानपदं रम्यं रहस्यं ज्ञानकल्पितम् ॥

श्रीवज्रामृतेऽप्ययमस्य सूक्ष्मयोगः साधारः सकर्मक उक्तः—

तिष्ठते निश्चलं विद्या अमृतं ध्यानमारभेत् ।
ध्यायते परमं तत्त्वममृतं बिन्दुरूपिणम् ॥
खमध्ये शशिसंकाशं शून्यतत्त्वमुदाहृतम् ।
अक्षयमव्ययं सूक्ष्मं वज्रसत्त्वमनाहतम् ॥
नाभिमध्ये स्थितो देवः कर्णिकागूढगोचरे ।
स्रवते शुक्ररूपेण भगलिङ्गान्तरे स्थितः ॥

(म० त० टी०, पृ० १८)

शुक्रच्यवनात् सुखोपलब्धिः सूक्ष्मयोगः। स च नराणां षोडशवर्षान्ते भवति। तेन तस्योपभोगाय विवाहपाणिग्रहणादिकं कार्यम्।

(वि० प्र०, II.२०४)

अकलः कलनातीतश्चतुर्थध्यानकोटिधृक् ।
सूक्ष्मयोग इति ख्यातो निःस्पन्दादिगतोर्ध्वतः ॥

(वि० प्र०, II.२०५)

सेकः (द्विधा)

सेकोऽस्मिन् कालचक्रे द्विधाऽपि शिशुगुणवशाद् लौकिकः, अनुत्तरोऽनुत्तरमार्गकाङ्क्षिणां गुणवशादिति। (वि० प्र०, III.५२)

सेवा

सामान्योत्तमभेदेन सेवा तु द्विविधा भवेत् ।
वज्रचतुष्केण सामान्यमुत्तमं ज्ञानामृतेन च ॥

(गु० स०, १८.१३६)

सेवाकाले महोष्णीषं बिम्बमालम्ब्य योगतः ॥

इह आदिकर्मिकेण प्रथमं सेवा कर्तव्या साधनविधिना। सेवा पञ्चामृताद्यैरिति। बाह्ये पञ्चामृतं विडादिकम्। आदिशब्देन गोक्वादिकम्, तैर्भक्षितैः सेवा देवतातोषणार्थम्। अध्यात्मनि पञ्चामृतानि पञ्चस्कन्धा। आदिशब्देन पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चप्रदीपाः। तेषां निरपेक्षता सेवा शरीरद्रव्य-तृष्णापरित्यागः। तया सेवया देवता वरदा भवन्ति, न गूथादिभक्षितेनेति। कायभोगनिरपेक्षता, वाग्भोगनिरपेक्षता, चित्तभोगनिरपेक्षता, च्यवनसुख-निरपेक्षता सेवा, कायवाक्चित्तब्रह्मचर्यसंयम इत्यर्थः। अनया देवता वरदा भवन्ति, न भवभोगस्पृहयेति। (वि० प्र०, II.२०७)

सेवा उत्तमसाधनम्

उत्तमे ज्ञानामृते चैव कार्यं योगषडङ्गतः ॥
सेवा षडङ्गयोगेन कृत्वा साधनमुत्तमम् ।
साधयेदन्यथा नैव जायते सिद्धिरुत्तमा ॥

(गु० स०, १८.१३८-१३९)

सेवा सामान्यसाधनम्

प्रथमं शून्यताबोधिं द्वितीयं बीजसंहृतम् ।
तृतीयं बिम्बनिष्पत्तिश्चतुर्थं न्यासमक्षरम् ॥
एभिर्वज्रचतुष्केण सेवासामान्यसाधनम् ।

(गु० स०, १८.१३७-१३८)

सोमपानम्

सोमपानममृतपानम्। (म० त० टी०, पृ० २३)

स्तम्भनम्

स्तम्भनं निष्पन्दीकरणम्। (म० त० टी०, पृ० ११)

स्त्रीभुवनम्

स्त्रीति योगिन्यस्तासां भुवनं मण्डलं स्त्रीभुवनम्। (ख० त० टी०, २३३)

स्पन्दम्

तोयधातुबिन्दोः स्वच्छद्रवं गुह्यकमले वज्रमणौ गतं स्पन्दम् इत्युच्यते।
(वि० प्र०, III.५१)

स्पर्शनम्

स्पर्शनमिति कमले वज्रप्रवेशनम्। (डा० ज्ञा० सं० र०, पृ० २)

स्मरणम्

स्मरणमिति गुरुवचनैः सह समाहितः। (डा० जा० सं० र०, पृ० २)

स्वयम्भुवः

स्वयमात्मना हेतुनिरपेक्षत्वाद् भवति, साक्षाद् भवतीति स्वयम्भुवः।
(अ० क०, पृ० ८)

स्वयम्भूः

स्वयम्भूः सर्वविकल्परहितचित्तत्वादिति। (अ० क०, पृ० ४५)

[स्वयम्भूः] स्वयमात्मना भवतीति तथा। (अ० क०, पृ० ४६)

स्वाभाविककायः

बुद्धधर्माणां काय आश्रय इति कृत्वा स्वाभाविकः काय इत्युच्यते, तथताप्रकाशयोः स्वरूपेऽत्यन्तमवस्थानात्। (ख० त० टी०, २३१)

हठयोगः

एवं च हठयोगः— यदा प्रत्याहारादिभिर्दृष्टे बिम्बे सत्यक्षरक्षणेनोत्पद्यते। अयन्त्रितप्राणतया नादनिदानाभ्यासात् सहजानन्दाभ्यासाद् हठेन हूंकार-नादेन प्राणं मध्यमायां वाहयेत्। एवं सुशिक्षितायास्तन्त्रोक्तगुणयुक्ताया अनुरागिताया वरकामिन्याः कक्कोले बोलं विधिवत् प्रक्षिप्य निष्कम्पतया विश्रम्य तस्याः किञ्जल्कमुखे वज्रमणिं निष्पीड्य निर्भर(निर्मल) प्रीतिरसेन

क्षणं न चालयेत्। ततस्तयोः क्षरद्दशोदये हूंकारोच्चारणपुरःसरं सद्गुरु-प्रसादीकृतमामुखयतश्चतुर्थसहजानन्दानुभवेन बोधिचित्तबिन्दुनिरोधस्ततोऽ-क्षरक्षणलाभः। एवं च समाध्यङ्गस्फुटीभाव इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० २९)

इदानीं हठयोग उच्यते। इह यदा प्रत्याहारादिभिर्बिम्बे दृष्टे सत्यक्षरक्षणं नोत्पद्यते, अयन्त्रितप्राणतया, तदा नादाभ्यासाद् वक्ष्यमाणाद् हठेन प्राणं मध्यमायां वाहयित्वा प्रज्ञाऽब्जगतकुलिशमणौ बोधिचित्तबिन्दुनिरोधादक्षर-क्षणं साधयेन्निस्पन्देनेति हठयोगः। (वि० प्र०, II.२१२)

हलाहलशताननः

हलाहल आकाशज्ञानतया वज्रान्तः प्राणबन्धः, ते[न] संकलनाडीगत-सुखतया शतमनन्तान्याननानि सुखज्ञानानि यस्य स हलाहलशताननः।

(अ० कं०, पृ० ४९)

हृद्वज्रः

सहजकायत्वाद् हृद्वज्रः। (अ० क०, पृ० ५०)

हृष्टतुष्टाशयः

हृष्टस्तादात्मिकसुखेन, तुष्ट आनुबन्धिकसुखेन, आशयः कायवाक्चित्त-लोलीभूतः सहजकायो येषां ते हृष्टतुष्टाशयाः। (अ० क०, पृ० ६)

तदात्मसुखनिष्पत्त्या हृष्टः, आयतिसुखनिष्पत्त्या तुष्टः। (अ० क०, पृ० १०९)

●

ग्रन्थ-ग्रन्थकारसूची

●

अवान्तरशब्दानुक्रमणी

•



yo